मुण्डकोपनिषत्

शंकरभाष्य तथा आनन्दगिरिटीका हिन्दीव्याख्या सहित।

हिन्दी व्याख्या - स्वामी विष्णु तीर्थ परमहंस

मुण्डकोपनिषत्

(प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः)

ओम् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।
ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

हे देवगण ! हम कानोंसे कल्याणमय शब्दों को सुनें। हम अग्निहोत्री (अथवा यज्ञकर्म में समर्थ होकर) आखों से मंगलमय दृश्य देखें। दृढ़ अंग और शरीरों से स्तुति करने वाले हमलोग देवताओं के लिए हितकर आयु का भोग करें। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

यदक्षरं परं ब्रह्म विद्यागम्यमितीरितम्।
यस्मिन्ज्ञाते भवेज्ज्ञातं सर्वं तत्स्यामसंशयम्।।

जो अक्षर पर ब्रह्म और विद्या से जानने योग्य कहा गया है; जिसके ज्ञान से सब कुछ जाना जाता है; संशय रहित मैं वही हूँ।

ब्रह्मोपनिषद्गर्भोपनिषदाद्या अथर्वणवेदस्य बह्वय उपनिषदः सन्ति। तासां शारीरकेऽनुपयोगित्वेनाव्याचिख्यासितत्वाददृश्यादिगुणको धर्मोक्तेरित्याद्यधिकरणोप-योगितया मुण्डकस्य व्याचिख्यासितस्य प्रतीकमादत्ते- ब्रह्मा देवानामित्याद्याथर्वणो-पनिषदिति। अथर्ववेद के ब्रह्मोपनिषद् गर्भोपनिषद् आदि अनेक उपनिषद हैं। उनका ब्रह्मसूत्र में अनुपयोगी होने से व्याख्यान के योग्य न होने से अदृश्य आदि गुणवाले धर्म के कथन आदि अधिकरण (ब्र.सू.द्वितीय अध्याय छठा अधिकरण) के उपयोगि होने से व्याख्या के अभिष्ट मुण्डक उपनिषदका प्रतीक ग्रहण करते हैं- **ओम् ब्रह्मा देवानामित्याद्याथर्वणोपनिषत्।** 'ओम् ब्रह्मा देवानाम्' इत्यादि मुण्डक उपनिषत् अथर्ववेदकी है। **व्याचिख्यासितेति**

शेषः। जिसकी व्याख्या के इष्ट है इतना जोड़ देना। **नन्वियमुपनिषन्मन्त्ररूपा मन्त्राणां चेषे त्वेत्यादीनां कर्मसंबन्धेनैव प्रयोजनवत्त्वम्। एतेषां च मन्त्राणां कर्मसु विनि- योजकप्रमाणानुपलम्भेन तत्संबन्धासंभवान्निष्प्रयोजनत्वाद्व्याचिख्यासितत्त्वं न संभवतीति शंकमानस्योत्तरम्। सत्यं कर्मसंबन्ध भावेऽपि ब्रह्मविद्याप्रकाशनसामर्थ्या- द्विद्यया संबन्धो भविष्यति।** शंका- यह मंत्ररूप उपनिषत् है। मन्त्रोंका 'इषे त्वा' इत्यादि के समान कर्म-संबन्धके द्वारा प्रयोजनवाला होना सिद्ध है। इन मंत्रोंका कर्ममें विनियोजक प्रमाणके उपलब्ध न होनेसे कर्मसे संबन्ध असंभव होनेसे और निष्प्रयोजन होनेसे उनकी व्याख्या करनेकी इष्टत्वं संभव नहीं है, इस प्रकार शंका करनेवालेके प्रति उत्तर है। सत्य है कर्मका संबन्ध होने पर भी ब्रह्मविद्याके प्रकाशनमें सामर्थ्य होनेसे विद्याका संबन्ध हो सकता है। **ननु विद्यायाः पुरुषकर्तृकत्वात्तत्प्रकाशकत्वेऽस्या उपनिषदोऽपि पौरुषेयत्वप्रसंगात्पाक्षिक- पुरुषदोषजत्वशंकयाऽप्रामाण्याद्व्याचिख्यासितत्वं नोपपद्यत इत्याशंक्याऽऽह- अस्याश्चेति।** विद्या पुरुष कर्तृक होनेसे विद्याके प्रकाशक होनेसे यह उपनिषद् भी पौरुषेयत्व प्रसंग होनेसे पाक्षिक पुरुष-दोष-उत्पन्न शंकासे अप्रामाण्य होनेसे व्याख्या करनेके इष्टत्व संभव नहीं है, ऐसी आशंका करके कहते हैं-

अस्याश्च विद्यासम्प्रदायकर्तृपारम्पर्यलक्षणसम्बन्धमादावेवाऽऽह स्वयमेव स्तुत्यर्थम्। श्रुति इसकी स्तुतिके लिए इसके विद्यासंप्रदायके कर्ताओं की परम्परा रूप सम्बन्धका सबसे पहले स्वयं ही वर्णन करती है।

विद्यायाः संप्रदयप्रवर्तका एव पुरुषा न तूत्प्रेक्षया निर्मातारः। संप्रदायकर्तृत्वमपि नाधुनातनं येनानाश्वासः स्यात्किंत्वनादिपारम्पर्यागतम्। ततोऽनादिप्रसिद्धब्रह्म- विद्याप्रकाशनसमर्थोपनिषदः पुरुषसम्बन्धः संप्रदायकर्तृत्वपारम्पर्यलक्षण एव तमादावेवाऽऽहेत्यर्थः। विद्यासम्प्रदायकर्तृत्वमेव पुरुषाणाम्। विद्या के संप्रदायके प्रवर्तक ही पुरुष है किन्तु उत्प्रेक्षासे (अटकल,अनुमान) निर्माता नहीं है। संप्रदायके कर्तृत्व भी अब के नहीं, जिससे अविश्वास हो किन्तु अनादि परंपरासे चला आया है। इससे अनादि प्रसिद्ध ब्रह्मविद्या के प्रकाशन में उपनिषद समर्थ हैं। पुरुषका संबन्ध तो संप्रदाय कर्तृत्व परम्परा लक्षण वाला ही है। इस बात को पहले ही कहते हैं। पुरुषोंका विद्या-संप्रदायके कर्तृत्व ही है। **यथा विद्यायाः पुरुषसम्बन्धस्तथैवोपनिषदोऽपि यदि पुरुषसम्बन्धो विवक्षितः पौरुषेयत्वपरिहाराय तर्हि तथाभूतसंबन्धाभिधायकेनान्येन भवितव्यं स्वयमेव स्वसंबन्धाभिधायकत्वे स्ववृत्तिप्रसंगादित्याशंक्याऽऽह- स्वयमेव स्तुत्यर्थमिति।** जैसे

विद्याका पुरुषके साथ संबन्ध है वैसे उपनिषदोंका भी पुरुष संबन्ध यदि विवक्षित है, पौरुषेयत्वके परिहार के लिए वैसे संबन्धके अभिधायकके रूपसे किसी और होना चाहिए, स्वसंबन्धके स्वयं अभिधायक होनेसे स्ववृत्तिका प्रसंग होगा? इसे कहते हैं- श्रुति स्वयं ही स्तुतिके लिए कहती है। **विद्यास्तुतौ तात्पर्यान्न स्ववृत्तिर्दोष इत्यर्थः।** विद्याकी स्तुतिमें तात्पर्य होनेसे स्ववृत्तिदोष नहीं है। **एवं हि महद्भिः परमपुरुषार्थसाधनत्वेन गुरुणायासेन लब्धा विद्येति श्रोतृबुद्धिप्ररोचनाय विद्यां महीकरोति।** इस प्रकार यह दिखलाकर कि इस विद्याको परमपुरुषार्थके साधन रूपसे महा पुरुषोंने अत्यन्त परिश्रमसे प्राप्त किया था; श्रुति श्रोताओंकी बुद्धिमें इसके लिए रुचि उत्पन्न करनेके लिए इसकी महत्ता दिखलाती है। **स्तुतिर्वा किमर्थेत्यत आह- श्रोतृबुद्धीति।** किस प्रयोजन के लिए स्तुति है इस पर कहते हैं कि श्रोताकी बुद्धिके प्ररोचन के लिए। **स्तुत्या प्ररोचितायां हि विद्यायां सादराः प्रवर्तेरन्निति।** स्तुति के द्वारा रुचिकर प्रतीत हुई विद्याके उपार्जनमें मुमुक्षु आदरपूर्वक प्रवृत्त हों। **प्रवर्तेरन्निति पाठो युक्तः। वृतुधातोरात्मनेपदि-त्वात्।** प्रवर्तेरन् इस प्रकारका पाठ सही है। क्योंकि वृतु धातु आत्मनेवद है। यहाँ इस प्रकार का पाठ है। **विद्याया यत्प्रयोजनं तदेवास्या उपनिषदोऽपि प्रयोजनं भविष्यतीत्यभिप्रेत्य विद्यायाः प्रयोजनसम्बन्धमाह- प्रयोजनेनत्विति।** विद्या का जो प्रयोजन है वही इस उपनिषदका भी प्रयोजन होगा, इस अभिप्रायसे विद्याका प्रयोजनके साथ सम्बन्ध कहते हैं- **प्रयोजनेन तु विद्यायाः साध्य-साधनलक्षणसम्बन्धमुत्तरत्र वक्ष्यति 'भिद्यते हृदयग्रन्थिः' (मुं.२.२.८) इत्यादिना।** ब्रह्मविद्याका प्रयोजनके साथ साध्य-साधनरूप सम्बन्ध आगे चलकर 'भिद्यते हृदयग्रन्थिः' इत्यादि मन्त्रों द्वारा बतलाया जाएगा। **संसारकारणनिवृत्तिर्ब्रह्मविद्याफलं चेत्तर्ह्यपरविद्ययैव तन्निवृत्तेः सम्भवान्न तदर्थं ब्रह्मविद्याप्रकाशकोपनिषद्व्याख्यातव्येत्याशंक्याऽऽह- अत्र चेति।** ब्रह्मविद्याका फल संसारके कारणकी निवृत्ति है तो अपरविद्याके द्वारा उसकी निवृत्ति संभव होने से, उसके लिए ब्रह्मविद्याका प्रकाशक उपनिषदोंकी व्याख्या नहीं करनी चाहिए? ऐसी आशंका होने पर भाष्यकारकहते हैं- **अत्र चापरशब्दवाच्याया-मृग्वेदादिलक्षणायां विधिप्रतिषेधमात्रपरायां विद्यायां संसारकारणाविद्या-**

दिदोषनिवर्तकत्वं नास्तीति स्वयमेवोक्त्वा परापरविद्याभेदकरणपूर्वकम् 'अविद्ययामन्तरे वर्तमानाः' (मु.१.२.८) इत्यादिना। यहाँ तो अपर-शब्दके वाच्य केवल विधि-प्रतिषेध परक ऋक्वेदादि लक्षण विद्यामें संसारके कारण अविद्यादिदोषों के निवर्तकत्व नहीं है इस बात को 'अविद्या के अन्दर रहते हुए' आदि मुण्डक मंत्रोसे पर और अपर विद्याके भेद करते हुए श्रुति स्वयं कहकर- **संसारकारणमविद्यादिदोष-स्तन्निवर्तकत्वमपरविद्यायाः कर्मात्मिकाया न संभवत्यविरोधात्। न हि शतशोऽपि प्राणायामं कुर्वतः शुक्तिदर्शनं बिना तदविद्यानिवृत्तिर्दृश्यते। ततोऽपरविद्यायाः संसारकारणाविद्यानिवर्तकत्वं नास्तीति स्वयमेवोक्त्वा ब्रह्मविद्यामाहेति सम्बन्धः।** संसारके कारण अविद्या आदि दोष हैं। कर्मस्वरूप अपरविद्याका उस अविद्यादि दोषके निवर्तकता संभव नहीं है। क्योंकि दोनों में विरोध नहीं है। हजारों प्राणायाम करनेवाले पुरुषका शुक्तिदर्शन के बिना उस शुक्तिविषयक अविद्या की निवृत्ति नहीं देखी गयी। इससे अपर विद्या का संसारके कारण अविद्या के निवर्तकता नहीं है। इसे स्वयं कहकर आगे ब्रह्मविद्याका कथन करते हैं। आगे वाक्य से इसका संबन्ध है। **किंच परमपुरु- षार्थसाधनत्वेन ब्रह्मविद्यायाः पर-विद्यात्वं निकृष्टसंसारफलत्वेन च कर्मविद्याया अपरविद्यात्वम्।** और भी परम-पुरुषार्थ-मोक्षके साधन होनेसे ब्रह्मविद्या परिविद्या है, तथा निकृष्ट संसार फल देनेवाली होने से कर्मविद्या अपरविद्या है। **ततः समाख्याबलादपरविद्यायामोक्ष-साधनत्वाभावोऽवगम्यत इत्यभिप्रेत्याह- परापरेति।** इससे समाख्या (अभिधान, नाम) के बलसे अपरविद्या मोक्षके साधन नहीं है यह जाना जाता है, इस अभिप्राय से कहते हैं- परापरेति। **यच्चाऽऽहुः कर्मजडाः केवलब्रह्मविद्यायाः कर्तृसंस्कारत्वेन कर्मांगत्वात्स्वातन्त्र्येण पुरुषार्थसाधनत्वं नास्तीति तदनन्तरश्रुत्यैव निराकृतमित्याह- तथा परप्राप्तिसाधनमिति।** कुछ कर्मजड़ जो कहते हैं कि केवल ब्रह्मविद्या कर्ताके संस्कार रूपसे कर्म का अंग होने से, स्वतन्त्र रूपसे पुरुषार्थका साधन नहीं है, वह अनन्तर श्रुतिके द्वारा निराकृत हो जाता है। इसे कहते हैं- **तथा परप्राप्तिसाधनं सर्वसाधनसाध्यविषयवैराग्यपूर्वकं गुरुप्रसादलभ्यां ब्रह्मविद्यामाह- 'परीक्ष्य लोकान्' (मुं.१.२.१२) इत्यादिना।** फिर 'परीक्ष्य लोकान्' इत्यादि मंत्रोंसे साधन-साध्यरूप सब प्रकारके विषयोंसे वैराग्यपूर्वक गुरुकृपासे प्राप्य ब्रह्मविद्याको ही परब्रह्मकी

प्राप्तिका साधन बतायी है। **ब्रह्मविद्यायाः कर्मांगत्वे कर्मणो निन्दा न स्यात्। न खल्वंगविधानाय प्रधानं विनिन्द्यते। अत्र तु सर्वसाध्यसाधननिन्दया तद्विषय-वैराग्यविधानपूर्वकं परप्राप्तिसाधनं ब्रह्मविद्यामाह।** यदि ब्रह्मविद्या कर्मका अंग है तो कर्मकी निन्दा नहीं होनी चाहिए। ऐसे तो अंगके विधानके लिए प्रधानकी निन्दा नहीं की जाती है। यहाँ तो समस्त साध्य-साधनोंकी निन्दासे उन विषयों से वैराग्य विधानपूर्वक परतत्त्वकी प्राप्तिका साधन ब्रह्मविद्या है यह कहते हैं। **अतो ब्रह्मविद्यायाः स्वप्रधनत्वात्तत्प्रकाशकोपनिषदां न कर्तुः स्तावकत्वमित्यर्थः।** इसलिए ब्रह्मविद्या स्वप्रधान होनेसे, उसके प्रकाशक उपनिषद कर्ता के स्तावक (प्रशंसक) नहीं है। यह अर्थ है। **यद्युपनिषदां स्वतन्त्रब्रह्मविद्याप्रकाशकत्वं स्यात्तर्हि तदध्येतॄणां सर्वेषामेव किमिति ब्रह्मविद्या न स्यादित्याशंक्याऽऽह- गुरुप्रसादलभ्या-मिति।** यदि उपनिषद् स्वतन्त्र रूपसे ब्रह्मविद्याका प्रकाशक है तो उनके अध्ययन करने वाले सभीको ब्रह्मविद्या क्यों प्राप्त नहीं होता है, ऐसी आशंका पर कहते हैं कि आचार्य की कृपासे ही वह प्राप्त होता है। **गुर्वनुग्रहादिसंस्का-राभावात्सर्वेषां यद्यपि न भविष्यति तथाऽपि विशिष्टाधिकारिणां भविष्यतीति भावः।** आचार्यके अनुग्रह आदि संस्कार अभावके कारण यद्यपि सभी को विद्या की प्राप्ति नहीं होगी, फिर भी विशिष्ट अधिकारियों को विद्या की प्राप्ति होगी। यह भाव है। **ननु स्वतन्त्रा चेद्ब्रह्मविद्या तर्हि प्रयोजनसाधनं न स्यात्। सुख-दुःखप्राप्तिपरिहारयोः प्रवृत्तिनिवृत्तिसाध्यतावगमात्तत्राऽऽह- प्रयोजनं चेति।** शंका- यदि ब्रह्मविद्या स्वतन्त्र है तो उसे प्रयोजनका साधन नहीं होना चाहिए। क्योंकि सुखकी प्राप्ति और दुःखका परिहार प्रवृत्ति और निवृत्तिसे सिद्ध होता है, यह जाना गया है। उसपर कहते हैं- **प्रयोजनं चासकृद्ब्रवीति 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति (मुं.३.२.९) इति 'परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे' (मुं.३.२.६) इति च।** तथा ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म हो जाता है' 'परम अमृत-धर्मवाले सभी पूर्णरूपसे मुक्त हो जाते हैं' इन मंत्रोसे ब्रह्मविद्याका प्रयोजन बारंबार बतलाया है। **स्मरणमात्रेण विस्मृतसुवर्णलाभे सुखप्राप्ति-प्रसिद्धे रज्जुतत्त्वज्ञानमात्राच्च सर्पजन्यभयकम्पादिदुःखनिवृत्तिप्रसिद्धेश्च न प्रवृत्ति-निवृत्तिसाध्यत्वं प्रयोजनस्यैकान्तिकम्।** स्मरणमात्रसे विस्मृत सुवर्णके लाभसे सुख की प्राप्ति होती है यह प्रसिद्ध है, रज्जुके स्वरूपके ज्ञानमात्रसे सर्पसे होनेवाला भय, कंप आदि दुखोंकी निवृत्ति प्रसिद्ध होने से प्रयोजन सर्वथा प्रवृत्ति-निवृत्ति

साध्य नहीं है। **अतो विश्रब्धं श्रुतिः प्रयोजनसम्बन्धं विद्याया असकृद्ब्रवीति। तस्मात्तत्प्रकाशकोपनिषदो व्याख्येयत्वं सम्भवतीत्यर्थः।** इसलिए विश्वसनीय श्रुति विद्याका प्रयोजन-सम्बन्धको बार-बार कहती है। इसलिए विद्या के प्रकाशक उपनिषदोंके व्याख्येयत्व संभव है।

यच्चाऽऽहुरेकदेशिनः स्वाध्यायाध्ययनविधेरर्थावबोधफलस्य त्रैवर्णिकाधिकार-त्वादधीतोपनिषज्जन्ये ब्रह्मज्ञानेऽस्त्येव सर्वेषामधिकारः। ततः सर्वाश्रमकर्मसमुच्चि-तैव ब्रह्मविद्या मोक्षसाधनमिति तत्राऽऽह- ज्ञानमात्र इति। जो वेदान्त एकदेशी का कहना है कि स्वाध्याय अध्ययनविधि अर्थज्ञान-फल पर्यन्त है और उसमें तीन वर्णोंका अधिकार होनेसे जिसने उपनिषदोंका अध्ययन किया है ऐसे सबका उपनिषदोंसे होनेवाला ब्रह्मज्ञानमें अधिकार है। उससे सभी आश्रमोंके कर्मोंके साथ ब्रह्मविद्या मोक्षका साधन है; इस पर कहते हैं- **ज्ञानमात्रे यद्यपि सर्वा-श्रमिणामधिकारस्तथापि संन्यासनिष्ठैव ब्रह्मविद्या मोक्षसाधनं न कर्म-सहितेति 'भैक्षचर्यां चरन्तः (मुं.१.२.११) 'संन्यासयोगात्' (मुं.३.२.६) इति च ब्रुवन्दर्शयति।** ज्ञानमात्रमें यद्यपि सभी आश्रमवालोंका अधिकार है तथापि संन्यास निष्ठा सहित ब्रह्मविद्या ही मोक्षका साधन है, कर्मके साथ नहीं, यह बात श्रुति 'भैक्षचर्यां चरन्तः' और 'संन्यासयोगात' इत्यादि मंत्रो से कहते हुए प्रदर्शित करती है। **सर्वस्वत्यागात्मकसंन्यासनिष्ठैव परब्रह्मविद्या मोक्षसाधनमिति वेदो दर्शयति।** सर्वस्वत्यागस्वरूप संन्यासनिष्ठा पूर्वक परब्रह्मविद्या ही मोक्षका साधन है, इस प्रकार वेद प्रदर्शित करता है। **तादृशसंन्यासिनां च कर्मसाधनस्य स्वस्याभावान्न कर्मसम्भवः।** उस प्रकारके संन्यासियोंका कर्मके साधन धनके अभाव होने से कर्म संभव नहीं है। **आश्रमधर्मीऽपि शमदमाद्युपबृंहितविद्याभ्यासनिष्ठत्वमेव।** आश्रमधर्मी होते हुए भी शम-दम आदिसे युक्त विद्याभ्यास में उनकी निष्ठा होती है। **तेषां शौचाचमनादिरपि तत्त्वो नाऽऽश्रमधर्मो लोकसंग्रहार्थत्वात्। ज्ञाना-भ्यासेनैवापावनत्वनिवृत्तेः। 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' इति स्मरणात्।** उनके शौच, आचमन आदि तत्त्व आश्रमके धर्म नहीं, क्योंकि वह लोकशिक्षाके लिए है। क्योंकि ज्ञानके अभ्याससे ही उनकी अशुद्धिकी निवृत्ति हो जाती है। 'ज्ञानके सदृश पवित्र करनेवाला दूसरा कोई साधन यहाँ नहीं है' इस प्रकार स्मृति (गीता) में कहा गया है। **त्रिषवणस्नानविध्यादेरज्ञसंन्यासिविषयत्वात्।**

क्योंकि तीन बार स्नान विधि आदि अज्ञानी संन्यासीको विषय करती है। (टिप्पणी- **प्रातर्मध्याह्नयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः। भिक्षुणां त्रिषवणमेकं तु ब्रह्मचारिणामिति व्यासः**)। (वानप्रस्थ और गृहस्थको प्रातः और मध्याह्न स्नानका विधान है। संन्यासीको तीनबार स्नान और ब्रह्मचारीको एक बार स्नानका विधान है।) अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्य-वासिनाम्। द्वात्रिंशच्च गृहस्थानां यथेष्टं ब्रह्मचारिणाम्। **अतः कर्मनिवृत्त्यैव साहित्यं ज्ञानस्य न कर्मणेत्यर्थः।** इसलिए कर्मनिवृत्तिके साथ ज्ञानका साहित्य (मिलाप) है, कर्मके साथ नहीं। **इतश्च न कर्मसमुच्चिता विद्या मोक्षसाधनमित्याह- विद्याकर्मविरोधा-च्चेति।** इसलिए भी कर्मसे समुच्चित विद्या मोक्षके साधन नहीं है, क्योंकि विद्या और कर्ममें विरोध है। इसे कहते हैं- **विद्याकर्मविरोधाच्च। न हि ब्रह्मात्मै-कत्वदर्शनेन सह कर्म स्वप्नेऽपि सम्पादयितुं शक्यम्।** और भी विद्या के साथ कर्मका विरोध होनेसे उनका समुच्चय नहीं हो सकता। ब्रह्मात्मैकदर्शनके साथ तो कर्मोंका सम्पादन स्वप्नमें भी नहीं किया जा सकता। **अकर्तृ ब्रह्मैवास्मीति करोमि चेति स्फुटो व्याघात इत्यर्थः।** अकर्ता ब्रह्म हूँ और करता हूँ, यह स्पस्ट व्याघात दोष है। (जैसे मम मुखे जिह्वा नास्ति) **यदा ब्रह्मात्मैकत्वं विस्मरति तदोत्पन्नविद्योऽपि करिष्यति ततः समुच्चयः सम्भा-व्यत इति न वाच्यमित्याह- विद्याया इति।** शंका- जब ब्रह्मात्मैकत्वका विस्मरण होता है, तब ज्ञानी कर्म करेगा। उससे समुच्चयकी संभावना होती है, इस प्रकार नहीं कहना चाहिए। इसपर कहते हैं- **विद्यायाः कालविशेषाभावाद-नियतनिमित्तत्वात्कालासंकोचानुपपत्तिः।** विद्यासंपादनका कोई विशेष काल नहीं है और न उसका कोई नियत निमित्त ही है; अतः किसी कालविशेषद्वारा उसका संकोच कर देना उचित नहीं है।

ननु गृहस्थानामंगिरःप्रभृतीनां विद्यासम्प्रदायप्रवर्तकत्वदर्शनाद्गृहस्थाश्रम-कर्मभिः समुच्चयो लिंगादवगम्यत इत्याशंक्याऽऽह- यत्त्विति। शंका- अंगिरा आदि गृहस्थोंका विद्यासंप्रदायप्रवर्तकत्व देखे जानेसे, गृहस्थाश्रमके कर्मोंके साथ समुच्चय हेतु से (कर्म और ज्ञानका समुच्चय) अवगत होता है। ऐसी आशंका होने पर कहते हैं- **यत्तु गृहस्थेषु ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृत्वादि लिंगं न तत्स्थितन्यायं बाधितुमुत्सहते।** गृहस्थोंमें जो ब्रह्मविद्याका सम्प्रदाय-कर्तृत्व आदि लिंग (हेतु) देखा गया है वह पूर्वप्रदर्शित न्यायको (न्यायसिद्ध विरोधको) बाधित करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। **लिंगस्य**

न्यायोपबृंहितस्यैव गमकत्वांगीकारात्समुच्चये च न्यायाभावात्प्रत्युत विरोधदर्शनान्न लिंगेन समुच्चयसिद्धिः। न्यायसे युक्त लिंग गमक (सूचक, बोधक) होना स्वीकार करनेसे तथा समुच्चयमें न्यायके अभाव होनेसे उलटा विरोधके दर्शनसे लिंगसे समुच्चयकी सिद्धि नहीं हो सकती है। **संप्रदायप्रवर्तकानां च गार्हस्थ्यस्याऽऽभास-मात्रत्वात्तत्त्वानुसन्धानेन मुहुर्मुहुर्बाधात्।** ब्रह्मविद्याके संप्रदायप्रवर्तकोंका गृहस्थाश्रम आभासमात्र होनेसे तत्त्वानुसंधान से बार-बार बाधित होनेसे (समुच्चयकी सिद्धि नहीं हो सकती है।) **'यस्य मे चास्ति सर्वत्र यस्य मे नास्ति किंचन। मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे किंचन दह्यते।।' इत्युद्गारदर्शनात्कर्माभासेन न समुच्चयः स्यात्तत्र च विधिर्न दृश्यते इति भावः।** जिस मेरे (ब्रह्मज्ञानीके लिए) सर्वत्र अस्ति (सत् ब्रह्म) ही है तथा (ब्रह्म के अतिरिक्त) कुछ भी नहीं है; मिथिला नगरी जलनेसे मेरा कुछ भी नहीं जलता है। इस प्रकार उद्गार (कथन)के दर्शन से कर्म-आभासके साथ समुच्चय नहीं हो सकता। वहाँ विधि नहीं दीखती है यह भाव है। (टिप्पणी- शंका- अविरोध होनेसे आभासके साथ समुच्चय हो सकता है? नहीं। अविरोध होने पर भी विधिके अभाव होनेसे समुच्चय संभव नहीं है।) **साधितं व्याख्येयत्वमुपसंहरति - एवमिति।** उपनिषद् व्याख्याके योग्य है, इस सिद्ध की गयी बातका उपसंहार करते हैं- **एवमुक्तसम्बन्धप्रयोजनाया उपनिषदोऽल्पाक्षरं ग्रन्थविवरणमा-रभ्यते।** इस प्रकार कहे गये सम्बन-प्रयोजनवाली उपनिषद्का संक्षिप्त विवरण आरंभ किया जाता है। **ग्रन्थे कथमुपनिषच्छप्रयोग इति शंकायामुप-निषच्छब्दवाच्यविद्यार्थत्वाल्लाक्षणिक इति दर्शयितुं विद्याया उपनिषच्छब्दार्थत्वमाह- य इमामिति।** ग्रन्थमें कैसे उपनिषत् शब्दका प्रयोग है ऐसी शंका होनेपर कहते हैं कि उपनिषत् शब्दका अर्थ विद्या होनेसे ग्रन्थ में लाक्षणिक प्रयोग है। इस बातको दिखानेके लिए विद्या का उपनिषत् शब्दार्थत्व कहते हैं- **य इमां ब्रह्म-विद्यामुपयन्त्यात्मभावेन श्रद्धाभक्तिपुरःसराः सन्तस्तेषां गर्भजन्मजरा-रोगाद्यनर्थपूगं निशातयति परं वा ब्रह्म गमयत्यविद्यादिसंसारकारणं चात्यन्तमवसादयति विनाशयतीत्युपनिषत्। उपनिपूर्वस्य सदेरेवमर्थ-स्मरणात्।** जो लोग श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आत्मभावसे इस ब्रह्मविद्याके समीप जाते हैं, यह उनके गर्भ, जन्म, जरा और रोग आदि अनर्थ समूह को शिथिल कर देती है। अथवा उन्हें परब्रह्मको प्राप्त करा

देती है, या संसारके कारणरूप अविद्या आदिका अत्यन्त अवसादन यानी विनास कर देती है; इसीए इस विद्याको 'उपनिषद्' कहते हैं। क्योंकि उप और नि पूर्वक सद् धातुका यही अर्थ माना गया है। (उप नि पूर्वक षद्लृधातुका विसरण, गति, अवसादन अर्थ है)। **आत्मभावेनेति– प्रेमास्पदतयेत्यर्थः।** आत्मभाव अर्थात् प्रेमका स्थान होने से। **अनर्थपूगं क्लेशसमुहं निशातयति शिथिलीकरोत्यपरिपक्वज्ञानाद् द्वित्रैर्जन्मभिर्मोक्षसम्भवादित्यर्थः।** अपरि- पक्व ज्ञानके कारण दो या तीन जन्मोंमें मोक्ष संभव होनेसे अनर्थपूग अर्थात् क्लेशसमूहोंको निशातयति यानी शिथिल कर देती है, यह अर्थ है।

ओम् ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह।। १।।

विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता देवानां प्रथमः ब्रह्मा सम्बभूव – विश्वका कर्ता और भुवनोंका रक्षक ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे। **सः सर्वविद्याप्रतिष्ठां ब्रह्मविद्यां ज्येष्ठपुत्राय अथर्वाय प्राह–** उन्होंने अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वाको समस्त विद्यायोंकी आश्रयभूत ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया था।। १।।

ब्रह्मा परिवृढो महान्धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यैः सर्वानन्यानतिशेत इति। ब्रह्मा परिवृढ (प्रभु) और महान् हैं, क्योंकि धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि से सभी का अतिक्रण करते हैं। **'ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः। ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सह सिद्धं चतुष्टयम्।।' इति स्मररणाद्धर्म- ज्ञानवैराग्यैश्वर्यैः सर्वानन्यानतिक्रम्य वर्तत इति परिवृढत्वं सिद्धमित्यर्थः।** ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्म जिस जगत्पति का अतुलनीय है और ये चार जन्मसे सिद्ध है, वह ब्रह्मा है। इस प्रकार स्मृतिवचनसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य से सभी को अतिक्रमण करके रहता है, इससे उनमें प्रभुत्व सिद्ध होता है। **देवानां द्योतनवतामिन्द्रादीनां प्रथमो गुणैः प्रधान सन्प्रथमोऽग्रे वा सम्बभूवाभिव्यक्तः सम्यक्स्वातन्त्र्येणेत्यभिप्रायः।** प्रकाशवान् इन्द्र आदि

देवताओंमें अधिक गुण होनेसे प्रधान होता हुआ प्रथम है, अथवा देवताओंसे पहले उत्पन्न होनेसे प्रथम है, वह ब्रह्मा सम्यक् रूपसे स्वतन्त्रतासे उत्पन्न हुए थे यानी अभिव्यक्त हुए थे, यह अभिप्राय है। **न तथा यथा धर्माधर्मवशात्संसारिणोऽन्ये जायन्ते।** वैसे नहीं जैसे धर्म और अधर्मके कारण अन्य संसारी लोग उत्पन्न होते हैं। **''योऽसावतीन्द्रियोऽग्राह्यः'' (मनु.१.७) इत्यादिस्मृतेः।** 'जो यह अतीन्द्रिय और अग्राह्य' आदि स्मृतिसे यह बात सिद्ध होती है। **'योऽसावतीन्द्रियोऽग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः। सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एष स्वयमुद्बभौ।।'** जो यह अतीन्द्रिय, अग्राह्य, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन, समस्त प्राणिरूप, अचिन्त्य है, वह यह स्वयं प्रकट हुए। मनुस्मृति। **स्वयमुद्भूतः शुक्र-शोणितसंयोगमन्तरेणाऽऽविर्भूतः'। स्वातन्त्र्यं गम्यत इत्यर्थः।** स्वयं उत्पन्न हुए अर्थात् रज और वीर्य के संयोगके बिना आविर्भूत हुए। इससे उनकी स्वतन्त्रता जाना जाता है। (यहाँ टीकाकारका अर्थ मुझे सही नही लग रहा है। क्योंकि ब्रह्माजीकी मानसी सृष्टि सनकादि शुक्रशोणित संयोगसे उत्पन्न नहीं हुए हैं फिर भी उन्हें स्वयं उद्भुत नहीं कहा जा सकता है।) **विश्वस्य सर्वस्य जगतः कर्तोत्पादयिता। भुवनस्यो-त्पन्नस्य गोप्ता पालयितेति विशेषणं ब्रह्मणो विद्यास्तुतये।** वह ब्रह्मा विश्व यानी समस्त जगत्के कर्ता यानी उत्पन्न करनेवाले है। तथा उत्पन्न जगत्के गोप्ता अर्थात् पालन करनेवाले हैं। ये दोनों विशेषण ब्रह्माजी द्वारा उपदिष्ट विद्याकी स्तुतिके लिए है। **स एवं प्रख्यात-महत्त्वो ब्रह्मा ब्रह्मविद्यां ब्रह्मणः परमात्मनो विद्यां ब्रह्मविद्यां 'येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यम्' इति विशेषणात्परमात्मविषया हि सा।** ब्रह्म यानी परमात्माकी विद्याको ब्रह्मविद्या कहते हैं। 'जिस विद्यासे अक्षर, सत्य पुरुषको जानता है' इस प्रकार विशेषणसे वह विद्या परमात्मा को विषय करती है। वह ऐसे प्रख्यात महिमावाले ब्रह्माजी ने ब्रह्मविद्याको **ब्रह्मणा वाऽग्रजेनोक्तेति ब्रह्मविद्या, तां सर्वविद्याप्रतिष्ठां सर्वविद्याभि-व्यक्तिहेतुत्वात्सर्वविद्याश्रयामित्यर्थः।** अथवा अग्रज ब्रह्माजीके द्वारा कही गयी विद्या, उसको ब्रह्मविद्या कहते हैं। सभी विद्यायोंकी अभिव्यक्ति

का हेतु होनेसे सब विद्याओंका आश्रय उस ब्रह्मविद्याको (ज्येष्ठपुत्र अथर्वको कहा इस प्रकार आगेके साथ संबन्ध है)। **वाक्योत्थबुद्धिवृत्त्युभिव्यक्तं ब्रह्मैव ब्रह्मविद्या। तच्च ब्रह्म सर्वाभिव्यञ्जकम्। ततः सर्वविद्यानां व्यंजकतयाऽऽश्रीयत इति सर्वविद्याश्रययाऽथवा सर्वविद्यानां प्रतिष्ठा परिसमाप्तिर्भवति यस्यमुत्पन्नायां ज्ञातव्याभावात्सा सर्वविद्याप्रतिष्ठेत्याह– सर्वविद्यावेद्यं वेति।** वाक्यसे उत्पन्न बुद्धि–वृत्तिमें अभिव्यक्त ब्रह्म ही ब्रह्मविद्या है। वह ब्रह्म सबका अभिव्यंजक (प्रकाशक) है। उससे समस्त विद्याओंका अभिव्यंजकरूपसे आश्रय किया जानेसे वह ब्रह्म–विद्या सब विद्यायोंका आश्रय है। अथवा जिस ब्रह्मविद्याके उत्पन्न होने पर समस्त विद्यायोंकी प्रतिष्ठा अर्थात् परिसमाप्ति हो जाती है, क्योंकि और कोई ज्ञातव्य नहीं रह जाता, इससे वह सब विद्यायोंकी प्रतिष्ठा है। इसे कहते हैं– **सर्वविद्यावेद्यं वा वस्त्वनयैव विज्ञायत इति ''येनाश्रुतं श्रुतं भवति अमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्'' (छा.६.१.३) इति श्रुतेः सर्वविद्या–प्रतिष्ठामिति च स्तौति।** अथवा 'जिसके द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है, मनन न किया हुआ मनन हो जाता है, तथा अज्ञात ज्ञात हो जाता है' इस श्रुतिके अनुसार समस्त विद्यायोंसे जाननेयोग्य पदार्थों का इसी विद्यासे ज्ञान हो जानेसे यह विद्या सर्वविद्याप्रतिष्ठा है, इस प्रकार विद्याकी स्तुति करते हैं। **विद्यामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह।** ब्रह्माजीने उस ब्रह्मविद्याको अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वासे कहा। **ज्येष्ठ–श्चासौ पुत्रश्चानेकेषु ब्रह्मणः सृष्टिप्रकारेष्वन्यतमस्य सृष्टिप्रकारस्य प्रमुखे पूर्वमथर्वा सृष्ट इति ज्येष्ठस्तस्मै ज्येष्ठपुत्राय प्राहोक्तवान्।। १।।** ज्येष्ठ होता हुआ जो पुत्र है वह ज्येष्ठपुत्र है। ब्रह्माजीकी सृष्टि की अनेकों प्रकारोंमें किसी एक सृष्टिप्रकारके आदिमें सबसे पहले अथर्वा उत्पन्न हुए थे, इससे ज्येष्ठ है। उस ज्येष्ठ पुत्रसे कहा।। १।।

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा–
थर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भारद्वाजाय सत्यवहाय प्राह

भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्।। २।।

ब्रह्मा यां परावरां ब्रह्मविद्यां अथर्वणे प्रवदेत तां अथर्वा पुरा अंगिरे उवाच– ब्रह्माजीने जिस परावर ब्रह्मविद्याको अथर्वासे कहा था उस ब्रह्मविद्याको अथर्वाने पूर्व कालमें अंगीको कहा। **स भारद्वाजाय सत्यवहाय प्राह–** उस अंगीने भरद्वाज गोत्रके सत्ववहसे कहा। **भार–द्वाजः अंगिरसे प्राह–** भरद्वाजगोत्र सत्यवहने अंगिरासे कहा।। २।।

यामेतामथर्वणो प्रवदेतावदद्बह्मविद्यां ब्रह्मा तामेव ब्रह्मणः प्राप्ता–मथर्वा पुरा पूर्वमुवाचोक्तवानंगिरेऽङ्गिनाम्ने ब्रह्मविद्याम्। जिस ब्रह्म–विद्याको ब्रह्माने अथर्वासे कहा था, ब्रह्मासे प्राप्त हुई उसी ब्रह्मविद्या को पूर्वकालमें अथर्वाने अंगीसे यानी अंगी नामक मुनिसे कहा। **स चांगिर्भारद्वाजाय भरद्वाजगोत्राय सत्यवहाय सत्यवहनाम्ने प्राह प्रोक्त–वान्।** उस अंगीने भारद्वाज यानी भरद्वाज गोत्रवाले सत्यवह नाम वाले मुनिको कहा। **भारद्वाजोऽङ्गिरसे स्वशिष्याय पुत्राय वा परावरां परस्मात्परस्मादवरेण प्राप्तेति परावरा परावरसर्वविद्याविषयव्याप्तेर्वा तां परावरामंगिरसे प्राहेत्यनुषंगः।। २।।** तथा भारद्वाजने अपने शिष्य अथवा पुत्र अंगिरासे, उत्कृष्टसे उत्कृष्टसे कनिष्ठको प्राप्त होनेसे अथवा पर और अवर सब विद्यायोंके विषयोंकी व्याप्तिके कारण उस परावर विद्याको अंगिरासे कह। ‘कर्मके साथ प्राह क्रियाका संबन्ध है।। २।।

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिदुपसन्नः पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।। ३।।

ह वै महाशालः शौनकः विधिवत् अंगिरसं उपसन्नः इति पप्रच्छ– प्रसिद्ध महागृहस्थ शोनकने अंगिराके पास विधिपूर्वक जाकर इसप्रकार पूछा। **कस्मिन् नु भगवः विज्ञाते इदं सर्वं विज्ञातं भवति–**

हे भगवन्! किसके जान लेनेसे यह सबकुछ जान लिया जाता है?।। ३।।

शौनकः शुनकस्यापत्यं महाशालो महागृहस्थोऽङ्गिरसं भारद्वाज-शिष्यमाचार्यं विधिवद्यथाशास्त्रमित्येतत्। उपसन्न उपगतः सन्पप्रच्छ पृष्टवान्। महाशाल यानी महागृहस्थ शुनकके पुत्रने विधिपूर्वक अर्थात् शास्त्रके अनुसार भारद्वाजके शिष्य आचार्य अँगिराके पास जाकर पूछा। **शौनकाङ्गिरसोः सम्बन्धादर्वाग्विधिवद्विशेषणादुपसदनविधेः पूर्वेषा-मनियम इति गम्यते।** शौनक और अंगिराके सम्बन्धके बाद विधिवत् विशेषण होनेसे यह जाना जाता है कि इससे पूर्व आचार्योंमें उप-सदनका कोई नियम नहीं था। **मध्यदीपिकान्यायार्थ वा विशेषणम्।** अथवा मध्यदीपिकान्यायके लिए यह विशेषण दिया गया है। (चौखटमें रखे हुए दीपक जैसे अन्दर बाहर प्रकाशित करता है वैसे पूर्व और पर दोनोंसे यह विशेषण लग जाता हैं) **अस्मदादिष्वप्युपसदनविधेरिष्टत्वात्।** क्योंकि हमलोगोंके लिए उपसदन विधि अभिष्ट है। **किमित्याह- कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते नु इति वितर्के भगवो हे भगवन्सर्वं यदिदं विज्ञेयं विज्ञातं विशेषेण ज्ञातमवगतं भवतीति।** क्या पूछा? सो बतलाते हैं- हे भगवन्! किस वस्तुको जान लेने पर यह सब विज्ञेय पदार्थ विशेष रूपसे जाना जाता है। इस प्रकार। नु यह संशयके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। **प्रश्नबीजमाह- एकस्मिन्निति।** प्रश्नका कारण कहते हैं- **एकस्मिन्- ज्ञाते सर्वविद्भवतीति शिष्टप्रवादं श्रुतवाञ्शौनकस्तद्विशेषं विज्ञातुकामः सन्कस्मिन्निति वितर्कयन्पप्रच्छ।** एकका ज्ञान हो जाने पर वह सर्वज्ञ हो जाता है, ऐसे शिष्टोंके वचन सुना हुआ शौनक उस विशेषको जाननेकी इच्छा रखते हुए इस प्रकार संशय पूर्वक पूछा। **उपादानत्का-र्यस्य पृथक्सत्त्वाभावादुपादाने ज्ञाते तत्कार्यं ततः पृथङ्नास्तीति ज्ञातं भवतीति सामान्यव्याप्तिस्तद्बलाद्वा पप्रच्छेत्याह- अथवेति।** अथवा उपादानसे उसके कार्य का पृथक्-सत्ताका अभाव होनेसे उपादान ज्ञात होनेसे उसका कार्य उससे पृथक नहीं है, इससे वह कार्य भी ज्ञात होता है; इस सामान्य व्याप्तिके बलसे कहते

हैं- **अथवा लोकसामान्यदृष्ट्या ज्ञात्वैव पप्रच्छ। सन्ति लोके सुवर्णा- दिशकलभेदाः सुवर्णत्वाद्येकत्वविज्ञानेन विज्ञायमाना लौकिकैः।** अथवा लौकिक सामान्य दृष्टिसे जानकर पूछा। लोकमें सुवर्णादि खण्डरूप आभूषणोंका भेद सुवर्ण होनेसे एकत्वविज्ञानसे लौकिक पुरुषोंद्वारा सुवर्णरूपसे जाने जाते हैं। **तथा किं न्वस्ति सर्वस्य जगद्भेदस्यैकं कारणं यदेकस्मिन्विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवतीति।** वैसे संपूर्ण जगद्भेदका वह एक कारण कौन-सा है, जिस एकके ही जान लिए जानेपर यह सबकुछ जान लिया जाता है? **प्रश्नाक्षराञ्जस्यमाक्षिप्य समाधत्ते- नन्वविदिते हीत्यादिना।** प्रश्नके अक्षरप्रयोगमें आक्षेप करके उसका समाधान देते हैं-

नन्वविदिते हि कस्मिन्निति प्रश्नोऽनुपपन्नः। किमस्ति तदिति तदा प्रश्नो युक्तः। सिद्धे ह्यस्तित्वे कस्मिन्निति स्यात्, यथा कस्मिन्निधेय- मिति। प्रश्न- किसी अज्ञात वस्तुके विषयमें कस्मिन् यह प्रश्न बनता नहीं। किमस्ति तत्- तब तो वह वस्तु क्या है? इस प्रकारका प्रश्न उचित है। फिर उसका अस्तित्व सिद्ध हो जानेपर ही 'कस्मिन्' ऐसा प्रश्न हो सकता है। जैसे (अनेक आधारोंका ज्ञान होने पर) किसमें रखा जाय ऐसा प्रश्न किया जाता है। **न, अक्षरबाहुल्यादाया- सभीरुत्वात्प्रश्नः सम्भवत्येव कस्मिन् न्वेकस्मिन्विज्ञाते सर्ववित्स्यादिति।। ३।।** ऐसा नहीं है। अक्षरोंकी अधिकतासे अधिक प्रयत्नका भय होने से किस एकके ज्ञानसे मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है; ऐसा प्रश्न बन सकता है।। ३।। **किमस्ति तदिति प्रयोगेऽक्षरबाहुल्येनाऽऽयासः स्यात्तद्भीरुतया कस्मिन्नित्यक्षराञ्जस्ये लाघवात्प्रश्न इत्यर्थः।। ३।।** 'किमस्ति तत्' इस प्रयोगमें अक्षरोंकी अधिकता से प्रयासकी अधिकता होगी, उस डरसे 'कस्मिन्' इस प्रकार अक्षरप्रयोग में लाघव होनेसे प्रश्न हो सकता है। यह अर्थ है।। ३।।

तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये। इति ह स्म यद्- ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।। ४।।

तस्मै सः ह उवाच- उस शौनकसे अंगिराने कहा **द्वे विद्ये वेदितव्ये परा च एव अपरा च-** जाननेयोग्य दो विद्याएँ है, एक परा और दूसरी अपरा। **इति ह स्म यत् ब्रह्मविदो वदन्ति-** जो इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।। ४।।

तस्मै शोनकायाङ्गिरा ह किलोवाच। किमित्युच्यते द्वे विद्ये वेदितव्ये इति। उस शौनकसे अंगिराने कहा। क्या कहा? सो बतलाते हैं- जाननेयोग्य दो ही विद्याएँ है, इस प्रकार। **एवं ह स्म किल यद्ब्रह्मविदो वेदार्थदर्शिनो वदन्ति।** इस प्रकार निःसन्देह जो ब्रज्ञज्ञानी अर्थात् वेद के अर्थको जाननेवाले कहते हैं। **के ते इत्याह।** वे दो विद्याएँ कौन-सी हैं? इसपर कहते हैं- **परा च परमात्मविद्या। अपरा च धर्माधर्मसाधनतत्फलविषया।** परमात्माको विषय करनेवाली परा विद्या। धर्म, अधर्म और उनके साधन तथा फलको विषय करनेवाली अपरा विद्या। **ननु कस्मिन्विदिते सर्वविद्भवतीति शौनकेन पृष्टं तस्मि-न्वक्तव्येऽपृष्टमाहाङ्गिरा द्वे विद्ये इत्यादि।** शंका- शौनकने तो यह पूछा था कि किसको जान लेने पर पुरुष सर्वज्ञ हो जाता है। प्रश्न के अनुरूप उत्तर कहने के स्थान पर अंगिराने नहीं पूछी गयी दो विद्या आदि उत्तर दिया है। **नैष दोषः, क्रमापेक्षत्वात्प्रतिवचनस्य।** समाधान- यह कोई दोष नहीं है। क्योंकि उत्तर तो क्रमकी अपेक्षा रखता है। **अपरा हि विद्याऽविद्या सा निराकर्तव्या।** अपरा विद्या तो अविद्या ही है, अतः उसका निराकरण किया जाना चाहिए। **तद्विषये हि विदिते न किञ्चित्तत्त्वतो विदितं स्यादिति।** अपराविद्याके विषय ज्ञात होनेपर तत्त्वतः (वास्तविक) कुछ भी नहीं जाता है। **निराकृत्य हि पूर्वपक्षं पश्चात्सिद्धान्तो वक्तव्यो भवतीति न्यायात्।। ४।।** क्योंकि यह नियम है कि पहले पूर्वपक्षका खण्डन कर पीछे सिद्धान्त कहा जाता है।। ४।।

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।। ५।।

तत्र अपरा ऋग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदः अथर्ववेदः शिक्षा कल्पः व्याकरणं निरुक्तं छन्दः ज्योतिषं इति- उनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम-वेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, ये अपराविद्यायें हैं। **अथ परा यया तत् अक्षरं अधिगम्यते-** और जिस विद्यासे उस अक्षर परमात्माका ज्ञान होता है वह परा-विद्या है।। ५।।

तत्र काऽपरेत्युच्यते। उनमें अपरा विद्या कौन-सी है, सो कहते हैं। **ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेद इत्येते चत्वारो वेदाः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमित्यङ्गानि षडेषाऽपरा विद्या।** ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद- ये चार वेद तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष- ये छः वेदांग अपरा-विद्याएँ हैं। **कल्पः सूत्रग्रन्थ। अनुष्ठेयक्रमः कल्प इत्यर्थः।** सूत्रग्रन्थोंको कल्प कहते हैं। यागानुष्ठानके क्रमको कल्प कहते हैं। (टिप्पणी- कात्यायन, अश्वलायन, आपस्तम्ब, बोधायन आदि मुनि रचित सूत्रग्रन्थों सन्दर्भमें कल्प कहा जाता है। उसके विषयको स्पष्ट करते हैं- अनुष्ठेयक्रमः कल्प इसप्रकार। कल्पित होता है यानी यागके प्रयोग इससे समर्थित होता है इस व्युत्पत्तिसे कल्प कहा जाता है।)

अथेदानीमियं परा विद्या उच्यते यया तद्वक्ष्यमाणविशेषणमक्षर-मधिगम्यते प्राप्यते। अब यह परा विद्या बतलायी जाती है, जिससे आगे छठे मन्त्रमें कहे जानेवाले विशेषणोंसे युक्त उस अक्षरका बोध अर्थात् प्राप्ति होती है। **अधिपूर्वस्य गमेः प्रायशः प्राप्त्यर्थत्वात्।** क्योंकि अधि उपसर्ग पूर्वक गम् धातु का प्रायः प्राप्ति अर्थमें प्रयोग होता है। **अविद्याया अपगम एव परप्राप्तिरुपचर्यते। अविद्यापगमश्च ब्रह्मावगति-रेवेति व्याख्यातमस्माभिर्ज्ञातोऽर्थस्तज्ज्ञप्तिर्वाऽविद्यानिवृत्तिरित्येतद्व्याख्यानावसरे। अतोऽधिगमशब्दोऽत्र प्राप्तिपर्याय एवेत्याह- न च परप्राप्तेरिति।** अविद्याकी

निवृत्तिमें परमात्माकी प्राप्तिका औपचारिक प्रयोग है। अविद्याकी निवृत्ति ही ब्रह्मकी अवगति (ज्ञान) है, ज्ञात अर्थ अथवा उसके ज्ञप्ति इसके व्याख्यान अवसरमें इस प्रकार हमने पहले व्याख्या की है। अतः अधिगम शब्द प्राप्तिका पर्यायवाची शब्द है। इसे भाष्यकार कहते हैं- **न च परप्राप्तेरवगमार्थस्य भेदोऽस्ति।** और भी परमात्माकी प्राप्ति और उसके ज्ञानके अर्थमें कोई भेद नहीं है। **अविद्याया अपाय एव हि परप्राप्तिर्नार्थान्तरम्।** अविद्याकी निवृत्ति ही परमात्माकी प्राप्ति है, इससे भिन्न कोई अन्य वस्तु नहीं। **साङ्गानां वेदानामपरविद्यात्वेनोपन्यासात्ततः पृथक्करणाद्वेदबाह्यतया ब्रह्मविद्यायाः परत्वं न सम्भवतीत्याक्षिपति- नन्विति।** अंगोंके साथ वेद अपरविद्या रूपसे उपन्यस्त होनेसे उससे पृथक् करने से वेदबाह्य होनेसे ब्रह्मविद्याका परविद्या होना संभव नहीं है, इसप्रकार आक्षेप करते हैं- **ननु ऋग्वेदादिबाह्या तर्हि सा कथं परा विद्या स्यान्मोक्षसाधनं च। या वेदबाह्याः स्मृतय इति हि स्मरन्ति।** शंका- तब तो वह (ब्रह्म विद्या) ऋग्वेदादिसे बाह्य है, अतः वह परा विद्या और मोक्षका साधन कैसे हो सकती है? **''या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः।'' इति स्मृतेः कुदृष्टित्वादनु- पादेया स्यादित्यर्थः। (मनुस्मृति.१२.९५) विद्याया वेदबाह्यत्वे तदर्थानामुपनिषदा- मप्यृग्वेदादिबाह्यत्वं प्रसत्येतेत्यर्थः।** जो स्मृतियाँ वेदसे भिन्न हैं और जो कोई कुदृष्टियाँ है वे सबके सब निष्फल हैं और मृत्युके बाद वे तमोनिष्ठ यानी नरक फलवाले हैं, इस प्रकार कहे गये हैं। इस मनुस्मृतिसे कृदृष्टि होनेसे उपादेय नहीं हैं। पराविद्या वेदबाह्य होनेसे उसके लिए उपदिष्ट उपनिषदोंकी भी ऋग्वेदादि-बाह्य होने की प्रसक्ति होगी। **कुदृष्टित्वान्निष्फलत्वादनादेया स्यात्।** अतः कृदृष्टि होनेसे निष्फल होनेके कारण वह ग्राह्य नहीं हो सकती। **उपनिषदां च ऋग्वेदादिबाह्यत्वं स्यात्। ऋग्वेदादित्वे तु पृथक्करणमनर्थकममथ परेति।** तथा इससे उपनिषद् भी ऋग्वेदादिसे बाह्य माने जायँगे। और यदि इन्हें ऋग्वेदादिमें ही माना जाय तो 'अथ परा' आदि वाक्यसे पृथक् करना अनर्थक होगा। **वेदबाह्यत्वेन पृथक्करणं न भवति किन्तु वैदिकस्यापि ज्ञानस्य वस्तुविषयस्य शब्दराश्यतिरेकाभिप्रायेणेत्याह- न वेद्यविषयेति।**

पराविद्याका वेदबाह्य रूपसे पृथक्करण नहीं होता है किन्तु वस्तु (आत्मा)को विषय करनेवाले ज्ञान, वैदिक होते हुए भी शब्दराशिसे अतिरिक्त है इस अभि- प्रायसे कहते हैं- **न। वेद्यविषयविज्ञानस्य विवक्षितत्वात्।** ऐसी बात नहीं। क्योंकि पराविद्यासे वेद्यविषयक ज्ञान बतलाना अभिष्ट है। **उपनिषद्वे- द्याक्षरविषयं हि विज्ञानमिह पराविद्येति प्राधान्येन विवक्षितं नोपनिष- च्छब्दराशिः। वेदशब्देन तु सर्वत्र शब्दराशिर्विवक्षितः।** उपनिषदोंसे जानने योग्य अक्षरको विषय करने- वाला विज्ञान पराविद्या है, प्रधानतासे यही बतलाना यहाँ अभिप्रेत है न कि उपनिषदोंकी शब्दराशि। और वेदशब्दसे तो सर्वत्र शब्दराशि ही कही जाती है। **शब्दराश्यधिगमेऽपि यत्नान्तरमन्तरेण गुर्वभिगमनादिलक्षणं वैराग्यं च नाक्षराधिगमः सम्भवतीति पृथक्करणं ब्रह्म- विद्यायाः परा विद्येति कथनं चेति।। ५।।** शब्दसमूहोंका ज्ञान हो जाने पर भी गुरुके निकट गमन पूर्वक श्रवण आदि लक्षण अन्य प्रयत्नके बिना तथा वैराग्यके बिना अक्षरका ज्ञान संभव नहीं है, इसलिए ब्रह्मविद्याका पृथक्करण और पराविद्या रूपमें कथन किया गया है।। ५।।

कर्मज्ञानाद्विलक्षणत्वाभिप्रायेण च पृथक्करणमित्याह- यथा विधिविषय इति। कर्म और उपासनासे विलक्षण होने से, इस अभिप्रायसे भी पराविद्याका पृथक्- करण हुआ है, इसे कहते हैं- **यथा विधिविषये कर्त्राद्यनेककारकोपसंहार- द्वारेण वाक्यार्थज्ञानकालादन्यत्रानुष्ठेयोऽर्थोऽस्ति अग्निहोत्रादिलक्षणो न तथेह परविद्याविषये, वाक्यार्थज्ञानसमकाल एव तु पर्यवसितो भवति। केवलशब्दप्रकाशितार्थज्ञानमात्रनिष्ठाव्यतिरिक्ताभावात्।** जैसे विधिके विषयमें कर्ता आदि अनेक कारकोंका एकत्रीकरण द्वारा वाक्यार्थ- ज्ञानके समयसे भिन्न समयमें अनुष्ठेय अग्निहोत्रादि पदार्थ है; वैसे परविद्याके विषयमें नहीं होता, परंतु वाक्यार्थज्ञानके समकाल में ही समाप्त हो जाता है। क्योंकि अकेले शब्दोंसे प्रकाशित अर्थज्ञान मात्र में निष्ठासे अतिरिक्त और कोई कार्यान्तरके अभाव है। **तस्मादिह**

परां विद्यां सविशेषणेनाक्षरेण विशिनष्टि यत्तदद्रेश्यमित्यादिना। वक्ष्यमाणं बुद्धौ संहृत्य सिद्धवत्परामृश्यते- यत्तदिति। अतः यहाँ आगेके मन्त्रमें अक्षर विशेषण पूर्वक पराविद्या को विशेषित करते हैं। आगे जो कुछ कहना है उसे अपनी बुद्धिमें बिठाकर सिद्धवस्तुके समान उसका उल्लेख करते हैं वह जो इत्यादिसे-

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः।। ६।।

यत् तत् अद्रेश्यं अग्राह्यं अगोत्रं अवर्णं अचक्षुःश्रोत्रं तत् अपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं अव्ययं यत् भूतयोनिं तत् धीराः परिपश्यन्ति- वह जो अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण और चक्षुःश्रोत्रादि रहित है तथा हस्त पादादि रहित है, नित्य, विभु, सर्वगत, अत्यन्त सूक्ष्म और व्ययरहित है, तथा जो संपूर्ण भूतोंका कारण है उसे विसेकीलोग सब ओर देखते हैं।। ६।।

अद्रेश्यमदृश्यं सर्वेषां बुद्धीन्द्रियाणामगम्यमित्येतत्। दृशेर्बहिः-प्रवृत्तस्य पञ्चेन्द्रियद्वारकत्वात्। वह जो अद्रेश्यं अर्थात् सभी ज्ञानेन्द्रियोंका अविषय है। क्योंकि बाहर प्रवृत्त हुई दृष्टि (बुद्धिवृत्ति) पांच ज्ञानेन्द्रिय द्वारा प्रवृत्त होती है। **अग्राह्यं कर्मेन्द्रियाविषयमित्येतत्।** अग्राह्य यानी कर्मेन्द्रियोंका अविषय है। **अगोत्रमनन्वयमित्यर्थः। न हि तस्य मूलमस्ति येनान्वितं स्यात्।** अगोत्र अर्थात् किसीसे अन्वित (जूडा) नहीं है। उसका कोई मूल (कारण) नहीं है जिससे वह अन्वित हो सकता है। **वर्ण्यन्त इति वर्णा द्रव्यधर्माः स्थूलत्वादयः शुक्लत्वादयो वा। अविद्यमाना वर्णा यस्य तदवर्णमक्षरम्।** जिनका वर्णन किया जाय वे स्थूलत्वादि या शुक्लत्वादि द्रव्यके धर्म वर्ण कहे जाते हैं, वे वर्ण जिसमें नहीं है वह अक्षर अवर्ण है। **अचक्षुःश्रोत्रं**

चक्षुश्च श्रोत्रं च नामरूपविषये करणे सर्वजन्तूनां ते अविद्यमाने यस्य तदचक्षुःश्रोत्रम्। अचक्षुःश्रोत्रं- चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय, ये सभी प्राणियोंके नाम और रूपको विषय करनेवाले करण हैं, वे जिसके नहीं है वह अचक्षुश्रोत्र है। **अप्राप्तप्रतिषेधप्रसंगान्न प्रधानपरत्वमपि शंकनीयमिति मत्वाऽऽह- यः सर्वज्ञ इति।** ये सब विशेषण पुरुषमें अप्राप्त होने से उनका प्रतिषेधका प्रसंग होगा इसलिए ये विशेषण प्रधान-परक हैं ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए। ऐसा मानकर कहते हैं- **यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इत्यादि-चेतनावत्त्वविशेषणत्वात्प्राप्तं संसारिणामिव चक्षुःश्रोत्रादिभिः करणैरर्थ-साधकत्वं तदिहाचक्षुःश्रोत्रमिति वार्यते। 'पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः' इत्यादिदर्शनात्।** 'जो सर्वज्ञ और सर्ववित्' इस श्रुतिमें पुरुषके लिए चेतनावत्त्व विशेषण दिया गया है, अतः अन्य संसारी जीवोंके समान उसके लिए भी चक्षुःश्रोत्रादि करणोंसे अर्थसाधकत्व प्राप्त होता है, यहाँ 'अचक्षुश्रोत्र' कहकर उसीका निषेध किया जाता है। क्योकि 'नेत्रके बिना भी देखता है और कानके बिना भी सुनता है' इत्यादि वाक्य श्रुतिमें देखा गया है। **किञ्च तदपाणिपादं कर्मेन्द्रियरहित-मित्येतत्।** और भी वह हस्तपाद रहित है अर्थात् कर्मेन्दियोंसे रहित है। **यत एवमग्राह्यमग्राहकं चातो नित्यमविनाशि।** क्योंकि इस प्रकार अग्राह्य और अग्राहक भी है इसलिए वह नित्य अर्थात् अविनाशी है। **विभुं विविधं ब्रह्मादिस्थावनान्तप्राणिभेदैर्भवतीति विभुम्।** विभु-ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त प्राणि भेदसे वह अनेक हो जाता है, इसलिए वह विभु है। **(विभुशब्दका अर्थ व्यापक न करके विविधैः भवति इति विभु किया है, क्योंकि आगे सर्वगत शब्दका अर्थ व्यापक है) सर्वगतं व्यापकमाकाशवत्सु-सूक्ष्मं शब्दादिस्थूलत्वकारणरहितत्वात्। शब्दादयो ह्याकाशवाय्वादीना-मुत्तरोत्तरं स्थूलत्वकारणानि तदभावात्सुसूक्ष्मम्।** सर्वगत अर्थात् व्यापक है, आकाशके समान शब्द आदि स्थूलत्व कारण रहित होनेसे अतिसूक्ष्म है। शब्दादि, आकाश वायु आदिकी उत्तरोत्तर स्थूलताके

कारण हैं उनसे रहित होनेके कारण सुसूक्ष्म है। **किं च तदव्यय-मुक्तधर्मत्वादेव न व्येतीत्यव्ययम्। न ह्यनङ्गस्य स्वाङ्गापचयलक्षणो व्ययः सम्भवति शरीरस्येव। नापि कोशापचयलक्षणो व्ययः सम्भवति राज्ञ इव। नापि गुणद्वारको व्ययः सम्भवत्यगुणत्वात्सर्वात्मकत्वाच्च।** तथा उपर्युक्त धर्मवाला होनेसे ही कभी उसका व्यय (ह्रास) नहीं होता इसलिए वह अव्यय है। अंगरहित उसका शरीरके समान अपने अंगोंका क्षयरूप व्यय संभव नहीं है। और राजाके समान कोशके क्षय होना जैसे व्यय संभव नहीं है। और निर्गुण तथा सर्वात्मक होनेसे गुणोंके द्वारा व्यय संभव नहीं है। **यदेवलक्षणं भूतयोनिं भूतानां कारणं पृथिवीव स्थावरजंगमानाम्।** ऐसे लक्षणवाला वह भूतोंका योनि यानी कारण है, जेसे पृथिवी स्थावरजंगमोंका कारण है। **परिपश्यन्ति सर्वत आत्मभूतं सर्वस्याक्षरं पश्यन्ति धीराः धीमन्तो विवेकिनः।** परिपश्यन्ति अर्थात् धीर विवेकीपुरुष उसे सबके आत्माके रूपमें चारों ओर देखते हैं। **ईदृशमक्षरं यया विद्ययाधिगम्यते सा परा विद्येति समुदायार्थः।। ६।।** ऐसा अक्षर जिस विद्यासे जाना जाता है वही परा विद्या है, यह इस संपूर्ण मन्त्रका अर्थ है।। ६।।

अगुणत्वादिति- उपसर्जनरहितत्वादित्यर्थः। अगुण होनेसे अर्थात् उपसर्जन (अप्रधान,गौण) रहित होनेसे। अर्थात् प्रधान होनेसे। **सर्वात्मकत्वाच्चेति-हेयस्यातिरिक्तस्याभावाच्चेत्यर्थः।। ६।।** सर्वात्मक होनेसे अर्थात् अतिरिक्त हेयके अभावसे।। ६।।

भूतयोन्यक्षरमित्युक्तम्। तत्कथं भूतयोनित्वमित्युच्यते प्रसिद्ध-दृष्टान्तैः। पहले कहा है कि अक्षरब्रह्म भूतोंकी योनि है। उसका भूतोंका कारण होना किस प्रकार है, से प्रसिद्ध दृष्टान्तोंके द्वारा श्रुति बतलाती है-

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।

यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।। ७।।

यथा उर्णनाभिः सृजते गृह्णते च– जैसे मकड़ी जालेको बनाति और उसे निगल जाती है, **यथा पृथव्यां ओषधयः सम्भवन्ति–** जैसे पृथिवीमें वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं, **यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि** – जैसे जीवित पुरुषसे केश एवं लोम उत्पन्न होते हैं, **तथा इह अक्षरात् विश्वं सम्भवति–** वैसे यहाँ अक्षरसे यह विश्व उत्पन्न होता है।। ७।।

यथा लोके प्रसिद्धम्, ऊर्णनाभिर्लूताकीटः किञ्चित्कारणान्तर–मनपेक्ष्य स्वयमेव सृजते स्वशरीराव्यतिरिक्तानेव तन्तून्बहिः प्रसारयति पुनस्तानेव गृह्णते च गृह्णाति स्वात्मभावमेवापादयति। जिस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध है कि मकड़ी किसी अन्य उपकरणकी अपेक्षा न करते हुए स्वयं ही अपने शरीरसे अभिन्न तन्तुओंको रचती अर्थात् उन्हें बाहर फैलाती है और फिर उन्हींको ग्रहण भी कर लेती है, यानी अपने शरीरसे अभिन्न कर देती है। **ब्रह्म न कारणं सहायशून्य–त्वात्कुलालमात्रवदित्यस्यानैकान्तिकत्वमुक्तमूर्णनाभिदृष्टान्तेन।** ब्रह्म, संसारका कारण नहीं है, किसी अन्य सहायकके अभाव होनेसे, अकेले कुलाल जैसे, इस अनुमान में ऊर्णनाभि दृष्टान्तके द्वारा अनैकान्तिक दोष कहा गया है। **ब्रह्म जगतो नोपादानं तदभिन्नत्वात्स्वरूपस्येवेत्यनुमानन्तरस्यानैकान्तिकत्वमाह– यथा च पृथिव्यामिति।** ब्रह्म, जगत् का उपादान कारण नहीं है, उससे अभिन्न होनेसे, स्वरूपका जैसे (जैसे ब्रह्म अपने स्वरूपका उपादान कारण नहीं है), इस दूसरे अनुमान में अनैकान्तिक दोष कहते हैं– **यथा च पृथिव्यामोषधयो ब्रीह्यादिस्थावरन्ता इत्यर्थः। स्वात्माव्यतिरिक्ता एव प्रभवन्ति।** और जैसे पृथिवीमें ब्रीहि–यव आदिसे लेकर वृक्षपर्यन्त समस्त वनस्पतियाँ उससे अपनेसे अभिन्न ही उत्पन्न होती हैं। **जगन्न ब्रह्मोपादानं तद्विलक्षणत्वात्। यद्यद्विल–क्षणं तत्तदुपादानकं न भवति। यथा घटो न तन्तूपादानक इति। अस्य व्यभिचारार्थमाह– यथा च सत इति।** जगत्, ब्रह्म उपादानक नहीं है, उससे

विलक्षण होनेसे। जो जिससे विलक्षण है वह उसका उपादान नहीं होता है। जैसे घट, तन्तु-उपादानक नहीं है। यानी घटका उपादानकारण तन्तु नहीं है। इस अनुमानके व्यभिचार दोष दिखानेके लिए कहते हैं- **यथा च सतो विद्यमानाज्जीवतः पुरुषात्केशलोमानि केशाश्च लोमानि च सम्भवन्ति विलक्षणानि।** और भी जैसे विद्यमान अर्थात् जीवित पुरुषसे उससे विलक्षण केश और लोम उत्पन्न होते हैं। **यथैते दृष्टान्तास्तथा विलक्षणं सलक्षणं च निमित्तारानपेक्षाद्यथोक्तलक्षणादक्षरात्सम्भवति समुत्पद्यत इह संसारमण्डले विश्वं समस्तं जगत्।** जैसे कि ये दृष्टान्त हैं उसी प्रकार इस संसारमण्डलमें इससे विलक्षण और समान लक्षणवाला यह विश्व यानी समस्त जगत्, किसी अन्य निमित्तकी अपेक्षा न करते हुए उस कहे गये लक्षणवाले अक्षरसे उत्पन्न होता है। **एकस्मिन्नपि दृष्टान्त सर्वानुमानानामनैकान्तिकत्वं योजयितु शक्यमिति शंकमानं प्रत्याह- अनेकदृष्टान्तेति।। ७।।** एक ही दृष्टान्तमें समस्त अनुमानोंका अनैकान्तिक दोषकी योजना की जा सकती थी, इस प्रकार शंकालु के प्रति कहते हैं- **अनेकदृष्टान्तोपादानं तु सुखार्थप्रबोधनार्थम्।। ७।।** अनेक दृष्टान्तोंका ग्रहण तो सरलतासे समझनेके लिये हि है।। ७।।

यद्ब्रह्मण उत्पद्यमानं विश्वं तदनेन क्रमेणोत्पद्यते न युगपद्बदर-मुष्टिप्रक्षेपवदिति क्रमनियमविवक्षार्थोऽयं मन्त्र आरभ्यते- ब्रह्मसे उत्पन्न होनेवाला जो विश्व है, वह इस क्रमसे उत्पन्न होता है, बेरोंकी मुट्ठी फेंक देनेके समान एक साथ उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार उस क्रमके नियमको बतलानेकी इच्छावाला यह मन्त्र आरंभ किया जाता है-

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्।। ८।।

तपसा चीयते ब्रह्म- ज्ञानरूप तपके द्वारा ब्रह्म उपचय अर्थात् स्थूलताको प्राप्त हो जाता है। **ततः अन्नं अभिजायते**- उससे अन्न

अर्थात् अव्याकृत उत्पन्न होता है। **अन्नात् प्राणः मनः सत्यं लोकाः कर्मसु च अमृतम्–** फिर अव्याकृत से क्रमशः प्राण–हिरण्यगर्भ, मन, सत्य–आकाशादि पंचमहाभूत, भूलोक आदि लोक, कर्म, और कर्मसे अमृतसंज्ञक कर्मफल उत्पन्न होता है।। ८।।

तपसा ज्ञानेनोत्पत्तिविधिज्ञतया भूतयोन्यक्षरं ब्रह्म चीयत उपचीचत उत्पिपादयिषदिदं जगदङ्कुरमिव बीजमुच्छूनतां गच्छति पुत्रमिव पिता हर्षेण। उत्पत्तिविधिका ज्ञाता होनेके कारण तप अर्थात् ज्ञानसे भूतोंका कारण अक्षरब्रह्म उपचित होता है; अर्थात् इस जगत्को उत्पन्न करनेकी इच्छा करते हुए कुछ स्थूलताको प्राप्त हो जाता है, जैसे अंकुररूपमें परिणत होनेवाला बीज कुछ स्थूल हो जाता है (फूल जाता है) अथवा जैसे पुत्रकी उत्पत्तिकी संभावना से पिता प्रसन्नता के कारण फूल उठता है। **एवं सर्वज्ञतया सृष्टिस्थितिसंहार–शक्तिविज्ञानवत्तयोपचितात्ततो ब्रह्मणोऽन्नमद्यते भुज्यत इत्यन्नमव्याकृतं साधारणं संसारिणाम्–** इस प्रकार सृष्टि–स्थिति–संहार–शक्तिके विज्ञानरूप सर्वज्ञता के कारण उस स्थूलताको प्राप्त हुए ब्रह्मसे अन्न उत्पन्न होता है। जो खाया जाता है अर्थात् भोगा जाता है उसे अन्न कहते हैं। संसारी जीवोंका साधारण भोग्य अव्याकृत यहाँ अन्न है। **ईश्वरत्वोपाधिभूतं मायातत्त्वं महाभूतादिरूपेण सर्वजीवैरुपलभ्यत इति सर्वसाधारण्येऽपि कथं जायतेऽदिसिद्धत्वादित्याशंक्याऽऽह– व्याचिकीर्षितेति।** माया ईश्वरकी उपाधि है। वह महाभूत आदि रूपसे सभी जीवोंके द्वारा उपलब्ध होता है। सर्वसाधारण होते हुए भी अनादिसिद्ध होनेसे उत्पन्न होता है यह कैसे? ऐसी आशंका करके उत्तर देते हैं – **व्याचिकीर्षितावस्थारूपेण अभिजायत उत्पद्यते।** उत्पन्न होता है अर्थात् व्याकृत–अवस्था प्राप्त होनेकी इच्छारूपमें परिवर्तित हो जाता है। **कर्मापूर्वसमवायिभूतसूक्ष्ममव्याकृतमिति केचित्। तन्न तस्य प्रतिजीवं भिन्नत्वादीश्वरत्वोपाधित्वासम्भवात्।** कुछ लोगोंका मानना है कि कर्मसे होनेवाले अपूर्वके साथ समवेत सूक्ष्म भूत अव्याकृत है। यह ठीक नहीं। सूक्ष्मभूत प्रत्येक जीवके लिए भिन्न होनेसे वे ईश्वरकी उपाधि

नहीं हो सकते। **सामान्यरूपेण संभवेऽपि पृथियादिसामान्यानां बहुत्वात् प्रकृतावे-कत्वश्रुतिव्याकोपापाताज्जाड्यमहामायारूपेणैव संभवेऽपि न कर्मापूर्वसमवायित्वम्।** सामान्यरूपसे संभव होनेपर भी पृथिवी, जल आदि सामान्योंका अनेक होनेसे प्रसंगप्राप्त एकत्वश्रुतिके व्याकोपके कारण जड महामायारूपसे संभव होने पर भी कर्म-अपूर्वके समवायिता संभव नहीं है। **तस्याकारकत्वाद्बुद्ध्यादीनामेव कारक-त्वाभिधानात्।** अपूर्व सहित भूतसूक्ष्म कारक नहीं है, क्योंकि बुद्ध्यादिको कारक कहा है। **कारकावयवेष्वेव क्रियासमवायाभ्युपगमात्।** क्योंकि कारकोंके अवयवोंमें क्रियाका समवाय माना गया है। **किंच न कार्यस्य स्वकारणप्रकृतित्वं दृष्टमिति भूतसूक्ष्मस्यापंचीकृतभूतप्रकृतित्वं न स्यात्।** और भी कार्यका अपने कारणप्रकृति रूपता देखी नहीं गयी है, इससे सूक्ष्मभूतका अपंचीकृतभूतोंकी प्रकृति होना हो नहीं सकता। **तस्मान्महाभूतसर्गादिसंस्कारस्पदं गुणत्रयसाम्यं मायातत्त्वमव्याकृतादि-शब्दवाच्यमिहाभ्युपगन्तव्यम्।** इसलिए महाभूतोंका उत्पत्यादि संस्कारके आस्पद (स्थान) तीनोंगुणोंका साम्यावस्थारूप मायातत्त्व अव्याकृत आदि शब्दोंका वाच्यार्थ को यहाँ स्वीकार करना चाहिए। **ततश्च अव्याकृताद्व्याचिकीर्षितावस्थातः अन्नात्प्राणो हिरण्यगर्भः।** उससे अर्थात् व्याकृत-अवस्था प्राप्त होनेकी इच्छारूपमें परिवर्तित अन्नसे (अव्याकृतसे) प्राण अर्थात् हिरण्यगर्भ (उत्पन्न होता है।) **पूर्वस्मिन्कल्पे हिरण्यगर्भप्राप्तिनिमित्तं प्रकृष्टं ज्ञानं कर्म च येनानुष्ठितं तदनुग्रहाय मायोपाधिकं ब्रह्म हिरण्यगर्भावस्थाकारेण विवर्तते।** पूर्वकल्प में जिस जीवने हिरण्यगर्भ पदवीको प्राप्त करनेके लिए विशेष कर्म और उपासना की है उसके ऊपर अनुग्रह करनेके लिए मायोपाधिक ब्रह्म (ईश्वर) ने हिरण्यगर्भ-अवस्था रूपसे विवर्तित होता है। **स च जीवस्तदवस्थाभिमानी हिरण्यगर्भ उच्यत इत्यभिप्रेत्याऽऽह- ब्रह्मण इति।** उस अवस्थासे अभिमान करनेवाला पूर्वकल्पका वह जीव हिरण्यगर्भ कहा जाता है। इसे कहते हैं- **ब्रह्मणो ज्ञानक्रियाशक्त्यधिष्ठितजगत्साधारणोऽविद्याकामकर्मभूतसमुदाय-बीजाङ्कुरोजगदात्माभिजायत इत्यनुषङ्गः।** ईश्वरकी ज्ञान और क्रियाशक्तिसे अधिष्ठित, व्यष्टि जीवोंका समष्टिरूप, तथा अविद्या, काम, कर्म और भूतोंकी समष्टिरूप बीजका अंकुर जगदात्मा उत्पन्न होता है। यहाँ प्राण शब्दका अभिजायते क्रियासे सम्बन्ध है। **ज्ञान-शक्तिभिः क्रियाशक्तिभिश्चाधिष्ठितं विशिष्टं जगद्व्यष्टिरूपं तस्य साधारणः समष्टि-**

रूपः सूत्रसंज्ञक इत्यर्थः। ज्ञान और क्रियाशक्तिसे अधिष्ठित विशिष्ट जगत् व्यष्टिरूप है उसका साधारण समष्टिरूप सूत्रनामवाला हिरण्यगर्भ है। यह अर्थ है। **तस्माच्च प्राणान्मनो मनआख्यं सङ्कल्पविकल्पसंशयनिर्णयाद्या–त्मकमभिजायते।** तथा उस प्राणसे मन यानी संकल्प, विकल्प, संशय, तथा निर्णयात्मक मननामक अन्तःकरण उत्पन्न होता है। **मनआख्य–मिति– समष्टिरूपं विवक्षितम्। व्यष्टिरूपस्य लोकसृष्ट्युत्तरकालत्वात्।। ८।।** समष्टिरूप अन्तःकरण विवक्षित है। क्योंकि व्यष्टिरूप अन्तःकरण लोकसृष्टि के बाद है। **ततोऽपि संङ्कल्पाद्यात्मकान्मनसः सत्यं सत्याख्यमाकाशादि भूतपञ्चकम् अभिजायते।** उस संकल्पादि स्वरूप मन (अन्तःकरण)से सत्य अर्थात् सत्यनामवाला आकाशादि पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं। **तस्मात्सत्याख्याद्भुतपञ्चकादण्डक्रमेण सप्त लोकाः भूरादयः।** फिर उस सत्यनामवाले भूतपंचकसे ब्रह्माण्डक्रमसे भूः आदि सात लोक उत्पन्न होते हैं। **तेषु मनुष्यादिप्राणिवर्णाश्रमक्रमेण कर्माणि।** उन लोकोंमें मनुष्यादि प्राणियोंके वर्ण और आश्रमके क्रमसे कर्म होते है। **कर्मसु च निमित्तभूतेष्वमृतं कर्मजं फलम्।** कर्मोंके निमित्तसे कर्मसे उत्पन्न अमृत अर्थात् फल होता है। **यावत्कर्माणि कल्कोटिशतैरपि न विनश्यति तावत्फलं न विनश्यति इत्यमृतम्।। ८।।** जबतक सौ करोडद्य कल्पतक भी कर्मोंका नाश नहीं होता तबतक उनका फल भी नष्ट नहीं होता; इसलिए कर्मफलको ‘अमृत’ कहा है।। ८।।

उक्तमेवार्थमुपसंजिहीर्षुर्मन्त्रो वक्ष्यमाणार्थमाह– पूर्वोक्त अर्थका उपसंहार करनेकी इच्छावाला यह नवम मंत्र आगे कहा जानेवाला अर्थ कहता है– **वक्ष्यमाणार्थमिति– वक्ष्यमाणस्याविद्याविवरणप्रकरण्स्याऽऽर–म्भार्थमुक्तपरविद्यासूत्रार्थोपसंहार इत्यर्थः।** आगे कहा जानेवाला अविद्याप्रकरण के आरंभके लिए कहेगये परविद्याका संक्षिप्तार्थका उपसंहार होता है। यह अर्थ है।

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।

तस्मादेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते।। ६।।

इत्यथर्ववेदयमुण्डकोपनिषदि प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः।। १-१।।

यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः- जो सामान्यरूपसे सबकुछ जानता है और विशेषरूपसे सबकुछ जानता है, जिसका विचार हि तप है। **तस्मात् एतत् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते-** उस ईश्वरसे ही यह हिरण्यगर्भ, नाम, रूप और अन्न उत्पन्न होता है।। ६।।

य उक्तलक्षणोऽक्षराख्यः सर्वज्ञः सामान्येन सर्वं जानातीति सर्वज्ञः। विशेषेण सर्वं वेत्तीति सर्ववित्। कहे गये लक्षणोंवाला अक्षर-संज्ञक ब्रह्म सर्वज्ञ और सर्ववित् है अर्थात् सामान्यरूपसे सबकुछ जानता है, इसलिए सर्वज्ञ और विशेषरूपसे सबकुछ जानता है, इससे सर्ववित् है। **सामान्येनेति- समष्टिरूपेण मायाख्येनोपाधिनेत्यर्थः। विशेषेण व्यष्टिरूपेणाविद्याख्येनोपाधिनाऽनन्तजीवभावमापन्नः स एव सर्व स्वोपाधितत्संसृष्टं च वेत्तीत्यधिदैवमध्यात्मं च तत्त्वाभेदः सूत्रितः।** सामान्यरूपसे अर्थात् मायानामवाली उपाधिके द्वारा समष्टिरूपसे। विशेषरूपसे अर्थात् अविद्या नामवाली उपाधिके द्वारा व्यष्टिरूपसे अनन्त जीवभावको प्राप्त, वही ईश्वर सभी उपाधियोंसे युक्त सबकुछ जानता है। इस प्रकार अधिदैवत और अध्यात्ममें तत्त्व का अभेद सूत्रित हुआ है। **स्रष्टृत्वं प्रजापतीनां तपसा प्रसिद्धं तद्वद्ब्रह्मणोऽपि स्रष्टृत्वे तपोनुष्ठानं वक्तव्यम्। ततः संसारित्वं प्रसज्येत्याशंक्याऽऽह- यस्य ज्ञानमयमिति।** प्रजापतियोंका स्रष्टृत्वं (क्लेशरूप) तपस्या द्वारा (पुराणोंमें) प्रसिद्ध है, उस ईश्वरका भी स्रष्टृत्वमें किस प्रकारका तप किया वह कहना चाहिए। उससे उसमें संसारित्वकी प्रसक्ति होगी, इस प्रकार आशंका करके कहते हैं- **यस्य ज्ञानमयं ज्ञानविकारमेव सार्वज्ञ्यलक्षणं तपो नायासलक्षणम्।** जिसका ज्ञानमय अर्थात् सर्वज्ञतारूप ज्ञानविकार हि तप है, आयास रूप नहीं है। **सत्त्वप्रधानमायाया ज्ञानाख्यो विकारस्तदुपाधिकं ज्ञानविकारं सृज्य-मानसर्वपदार्थाभिज्ञत्वलक्षणं तपो न तु क्लेशरूपं प्रजापतीनामिवेत्यर्थः।। ६।।**

इत्यथर्ववेदीयमुण्डकोपनिषद्भाष्यटीकायां प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः।। २।।

सत्त्वप्रधान मायाका ज्ञाननामवाला विकार, उस माया-उपाधिवाला ज्ञानविकार यानी सृज्यमान समस्त पदार्थोंका अभिज्ञ होना। ऐसा ज्ञानरूप तप न कि प्रजापतियोंके समान क्लेशरूप तप। **तस्माद्यथोक्तात् सर्वज्ञादेतदुक्तं कार्यलक्षणं ब्रह्म हिरण्यगर्भाख्यं जायते।** उस उपर्युक्त सर्वज्ञसे ही यह पूर्वोक्त हिरण्यगर्भ नामवाला कार्यब्रह्म उत्पन्न होता है। **किं च नामासौ देवदत्तो यज्ञदत्त इत्यादि लक्षणम्। रूपमिदं शुक्लं नीलमित्यादि। अन्नं च ब्रीहियवादिलक्षणं जायते। पूर्वमन्त्रोक्तक्रमेण इत्यविरोधे द्रष्टव्यः।। ६।।** और भी यह देवदत्त, यज्ञदत्त इत्यादि नाम, यह शुक्ल, नील इत्यादि रूप तथा ब्रीहि, यवदिरूप अन्न उत्पन्न होता है। अतः पूर्वमन्त्रसे इसका अविरोध समझना चाहिए।। ६।।

इति मुण्डकोपनिषद्भाष्ये प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः।। १-१।।

(प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः)

साङ्गा वेदा अपरा विद्योक्ता ऋग्वेदो यजुर्वेद इत्यादिना। यत्तदद्रेश्यमित्यादिना नामरूपमन्नं च जायत इत्यन्तेन ग्रन्थेनोक्तलक्षणमक्षरं यया विद्ययाऽधिगम्यत इति परा विद्या सविशेषणोक्ता। अब तक 'ऋग्वेदो यजुर्वेदः' इत्यादि मंत्रोंसे अंगों सहित वेदोंको अपरा विद्या बतलाया गया है। तथा 'यत्तदद्रेश्यम्' इत्यादिसे लेकर 'नामरूपमन्नं च जायते' यहाँतकके ग्रन्थसे कहे गये लक्षणवाला अक्षर जिस विद्यासे जाना जाता है, उस परा विद्याका विशेषणों सहित कथन किया गया है। **अतः परमनयोर्विद्ययोर्विषयौ विवेक्तव्यौ संसारमोक्षवित्युत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते।** इसके बाद इन दोनों विद्याओंके विषय संसार और मोक्षका विवेचना करनी है, इसलिए आगेका ग्रन्थ आरंभ किया जाता है। **तत्रापरविद्याविषयः कर्त्रादिसाधनक्रियाफलभेदरूपः संसारोऽनादिः अनन्तो दुःखस्वरूपत्वाद्धतव्यः प्रत्येकं शरीरिभिः**

उनमें अपरा विद्याका विषय संसार है, जो कर्ता-करण आदि साधनोंसे होनेवाले कर्म और उसके फलरूप भेदवाला, अनादि, अनन्त और दुःखरूप होनेके कारण प्रत्येक देहधारीके लिए जो त्याज्य है। **अनादिरूपादानरूपेणानन्तो ब्रह्मज्ञानात्प्रागन्तासम्भवात्प्रत्येकं शरीरिभि-र्हातव्यो दुःरूपत्वादित्यनेन यदाहुरेकजीववादि एकं चैतन्यमेकयैवाविद्यया बद्धं संसरति। तदेव कदाचिन्मुच्यते नास्मदादीनां बन्धमोक्षौ स्त इति तदपास्तं भवति। श्रुतिबहिष्कृतत्वात्।** उपादानरूपसे अनादि है, ब्रह्मज्ञानसे पूर्व उसका अन्त संभव नहीं होनेसे अनन्त है, दुःखरूप होनेसे त्यागके योग्य है; इत्यादि से जो एकजीववादीने कहा है, इसपर शंका है कि चैतन्य एक है, एक ही अविद्यासे वह बद्ध होकर संसारको प्राप्त होता है, वह एक चैतन्य कभी तो मुक्त होगा। (उस एक चैतन्यको जब ज्ञान होगा तो वह मुक्त होगा) तो हमारे लिए न बन्धन है और न मोक्ष है। ऐसे शंका करनेवाले (जीवन्मुक्तिप्रतिपादक इत्यादि) श्रुतिसे बहिष्कृत होनेसे यह शंका निरस्त हो गया है। **सुषुप्तेऽपि क्रियाकारकफलभेदस्य प्रहाणं भवति। बुद्धिपूर्वकप्रहाणस्य ततो विशेषमाह- सामास्त्येनेति।** सुषुप्तिमें भी क्रिया, कारक और फलभेदका नाश होता है, किन्तु बुद्धिपूर्वक नाश का विशेषता कहते हैं- **सामस्त्येन,** पूर्णरूपसे त्यागके योग्य है। **स्वोपाध्यविद्याकार्यस्याविद्या-प्रहाणेनाऽऽत्यन्तिकप्रहाणं विद्याफलमित्यर्थः।** स्व-अधिकारीचैतन्यकी उपाधि अविद्याका नाशसे आत्यन्तिक नाश विद्याका फल है। यह अर्थ है। **नदीस्रोतो-वदव्यवच्छेदरूपसम्बन्धः** वह संसार नदीके प्रवाहके समान अविच्छिन्न सम्बन्धवाला है। **तदुपशमलक्षणो मोक्षः परविद्याविषयोऽनाद्यनन्तो-ऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयः शुद्धः प्रसन्नः स्वात्मप्रतिष्ठालक्षणः परमा-नन्दोऽद्वय इति।** तथा उस संसारका उपशम रूप मोक्ष परा विद्याका विषय है और वह अनादि, अनन्त, अजर, अमर, अमृत, अभय, शुद्ध, प्रसन्न, अपनी आत्मामें प्रतिष्ठारूप तथा परमानन्द एवं अद्वितीय है। **अमरोऽपक्षयरहितः। अमृतो नाशरहित इत्यर्थः।** अमर अर्थात् अपक्षयसे रहित। अमृत अर्थात् नाशसे रहित। **अपरविद्यायाः परविद्यायाश्च विषयौ प्रदर्श्य पूर्वमपरविद्याया विषयप्रदर्शने श्रुतेरभिप्रायमाह- पूर्वं तावदिति।** अपर विद्या और पर विद्याविषयोंका प्रदर्शन किया है। उसमें पहले अपरविद्या

के विषयप्रदर्शनमें श्रुतिका अभिप्राय कहते हैं- **पूर्वं तावदपरविद्याया विषय-प्रदर्शनार्थमारम्भः। तद्दर्शने हि तन्निर्वेदोपपत्तेः।** उन दोनोंमें पहले अपरा विद्याका विषय दिखालेनेके लिए (आगेके मंत्रका) आरंभ किया जाता है। क्योंकि उसे जान लेनेपर ही उससे वैराग्य हो सकता है। **तथा च वक्ष्यति- 'परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्' (मुं.१.२. १२) इत्यादिना। न ह्यप्रर्शिते परीक्षोपपद्यत इति तत्प्रदर्शयन्नाह-** ऐसा ही 'परीक्ष्य लोकान्' इत्यादि वाक्योंसे आगे कहेंगे भी। बिना दिखलाये हुए उसकी परीक्षा नहीं हो सकती, इसीलिए उस कर्मफल को दिखलाते हुए कहते हैं-

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि। तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके।। १।।

कवयः यानि कर्माणि मन्त्रेषु अपश्यन् तत् एतत् सत्यम्- मेधावी वशिष्ठादि ऋषियोंने जिन अग्निहोत्रादि कर्मोंको ऋग्वेदादि मंत्रोंमें देखा था, वही यह सत्य है। **तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि-** उन कर्मोंका त्रेतामें अर्थात् हौत्र, औध्वर्यव और औद्गात्ररूपमें अनेक प्रकारसे विस्तार हुआ। **सत्यकामाः तानि नियतं आचरथ-** सत्य अर्थात् कर्मफलकी कामनासे युक्त होकर उनका आचरण करो। **लोके सुकृतस्य एषः वः पन्था-** इस संसारमें तुम्हारे लिए विहीत अग्निहोत्रादि कर्मोंके फलकी प्राप्तिका यही मार्ग है।। १।।

यदिष्टसाधनतयाऽनिष्टसाधनतया वा वेदेन बोध्यते कर्म तस्यासति प्रतिबन्धे तत्साधनत्वाव्यभिचारः सत्यत्वं न स्वरूपाबाध्यत्वं प्लवा ह्येत इत्यादिना निन्दितत्वात्स्वरूपबाध्यत्वेऽपि चार्थक्रियासामर्थ्यं स्वप्नकामिन्यामिव घटत इत्यभि-प्रेत्याऽऽह- तदेतत्सत्यमिति। जो इष्ट या अनिष्टसाधनरूपसे कर्म वेदके द्वारा जाना जाता है, प्रतिबन्ध न होते हुए, उस साधनताका व्यभिचार न होना (अर्थात् अवश्य फल प्रदान करनारूप) सत्यता है। किन्तु स्वरूपसे अबाधता

नहीं है। क्योंकि ‘प्लवा ह्येते’ आदि मन्त्रों में उनकी निन्दा की गयी है। स्वरूपका बाध होनेपर भी उनमें स्वप्नके स्त्री जैसे अर्थक्रिया सामर्थ्य घटता है। इस अभिप्रायसे कहते हैं- **तदेतत्सत्यमवि- तथम्। किं तत्। मन्त्रेष्वृ- ग्वेदाद्याख्येषु कर्माणि अग्निहोत्रादीनि मन्त्रैरेव प्रकाशितानि कवयो मेधाविनो वसिष्ठादयो यान्यपश्यन्दृष्टवन्तः।** वही वह सत्य अर्थात् अवितथ (लौकिक सत्य) है। वह क्या है? ऋग्वेद आदि मंत्रोंमें जो अग्निहोत्र आदि कर्म मंत्रोंके द्वारा प्रकाशित हुए हैं, जिन्हे कवि अर्थात् मेधावी वसिष्ठ आदि ऋषियोंने देखा था। **यत्तदेतत्सत्यमेका- न्तपुषार्थसाधनत्वात्।** वही यह पुरुषार्थका एकमात्र साधन होनेके कारण सत्य है। **तानि च वेदविहितान्यृषिदृष्टानि कर्माणि त्रेतायां त्रयीसंयोगलक्षणायां हौत्राध्वर्य्वौद्गात्रप्रकारायामधिकरणभूतायां बहुधा बहुप्रकारं सन्ततानि प्रवृत्तनि कर्मिभिः क्रियमाणानि त्रेतायां वा युगे प्रायशः प्रवृत्तानि।** वे ही वेदविहित और ऋषिदृष्ट कर्मियों के द्वारा क्रियमाण कर्म, हौत्र, औध्वर्यव और औद्गात्र प्रकारसे तथा अधि- करण (आश्रय या विषय)रूपसे तीनोंके संयोगलक्षणवाले त्रेतामें अनेक प्रकारसे प्रवृत्त हुए। अथवा त्रेतायुगमें अधिकतर प्रवृत्त हुए हैं। **ऋग्वेदविहितः पदार्थो हौत्रम्। यजुवेदाविहित आध्वर्यवम्। सामवेदविहित औद्गात्रम्। तद्रूपायां त्रेतायामित्यर्थः।** ऋग्वेदसे विहित पदार्थ हौत्र है। यजुर्वेदसे विहित पदार्थ आध्वर्यव है। सामवेदसे विहित पदार्थ औद्गात्र है। उसरूप त्रेतामें।

अतो यूयं तान्याचरथ निर्वर्तयत नियतं नित्यं सत्यकामा यथाभूतकर्मफलकामाः सन्तः। अतः सत्यकाम यानी यथाभूत कर्मफल की इच्छावाले होकर (अर्थात् जिस कर्मका जो फल है वैसे ही फलकी कामना करते हुए) तुम उनका नियत यानी नित्य आचरण करो यानी अनुष्ठान करो। **सत्यकामा मोक्षकामा इति समुच्च्याभिप्रायेण व्याख्यानमयुक्तम्। ‘एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके’ इति स्वर्गफलसाधनत्वविषय- वाक्यशेषविरोधात्।। १।।** समुच्चयके अभिप्रायसे सत्यकामा का अर्थ मोक्षकामा,

इस प्रकार जो व्याख्यान है वह ठीक नहीं है। क्योंकि वाक्यशेष 'एष वः पन्था' द्वारा वे स्वर्गफलके साधनको विषय करते हैं।। १।। **एष वो युष्माकं पन्था मार्गः सुकृतस्य स्वयं निर्वर्तितस्य कर्मणो लोके फलनिमित्तं लोक्यते दृश्यते भुज्यत इति कर्मफलं लोक उच्यते, तदर्थं तत्प्राप्तय एष मार्ग इत्यर्थः।** यही तुम्हारे सुकृत यानी स्वयं किये हुए कर्मोके लोककी प्राप्तिके लिए मार्ग है। फलके निमित्त देखा जाता है यानी भोगा जाता है, इससे कर्मफल लोकशब्दसे कहा जाता है। उस कर्मफलके लिए यानी कर्मफल प्राप्तिके लिए यही मार्ग है। **यान्येतानि अग्नि-होत्रादीनि त्रय्यां विहितानि कर्माणि तान्येष पन्था अवश्यफलप्राप्ति-साधनमित्यर्थः।। १।।** तात्पर्य हय है कि वेदत्रयीमें विहित जो ये अग्निहोत्र आदि कर्म हैं वे ही यह मार्ग है अर्थात् अवश्य फलप्राप्ति का साधन हैं।। १।।

तत्राग्निहोत्रमेव तावत्प्रथमं प्रदर्शनार्थमुच्यते सर्वकर्मणां प्राथम्यात्। तत्कथम्। उन कर्मोंमें सबसे पहले प्रदर्शनके लिए अग्नि-होत्रका कथन किया जाता है, क्योंकि सभीकर्मोंमें वह प्रथम है। सो किस प्रकार उसे कहते हैं-

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत्।। २।।

यदा हव्यवाहने समिद्धे ह्यर्चिः लेलायते- जिस समय अग्निके प्रदीप्त होनेपर उसकी ज्वाला उठने लगे, **तदा आज्यभागौ अन्तरेण आहुतीः प्रतिपादयेत्-** उस समय दोनों आज्यभागोंके मध्यमें आहुतियाँ डाले।। २।।

यदैवेन्धनैरभ्याहितैः सम्यगिद्धे समिद्धे हव्यवाहने लेलायते चलत्यर्चिस्तदा तस्मिन्काले लेलायमाने चलत्यर्चिष्याज्यभागावाज्यभाग-योरन्तरेण मध्य आवापस्थान आहुतीः प्रतिपादयेत्प्रक्षिपेद्देवतामुद्दिश्य। जिस समय डाले गये इन्धनोंसे हव्यवाहन यानी अग्नि अच्छी तरह

प्रज्वलित होनेपर उससे ज्वाला उठने लगे तब लहलहाते ज्वालामें आज्यभागके मध्यमें अर्थात् आवापस्थानमें देवतायोंके उद्देशसे आहुतियाँ अर्पण करें। **आहवनीयस्य दक्षिणोत्तरपार्श्वयोराज्यभागाविज्येते अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेति दर्शपूर्णमासे।** दर्श और पौर्णमास याग में आहवनीय अग्निके दक्षिण और उत्तर पार्श्वमें 'अग्नये स्वाहा' और 'सोमाय स्वाहा' इन दो मंत्रोद्वारा दो आहुतियों के द्वारा आज्यभाग अर्थात् अग्निषोम देवता पूजित होते है। **तन्मध्यमावापस्थानमुच्यते।** इन दो आहुतियोंके मध्यभाग आवापस्थान कहलाता है। **अग्निहोत्राहुत्योर्द्वित्व प्रसिद्धम्। सूर्याय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति प्रातः। अग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति सायम्।** अग्निहोत्रकी दो आहुतियाँ प्रसिद्ध है। सूर्याय स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ये दो आहुति सुबह। और अग्नये स्वाहा प्रजापतये स्याहा ये दो आहुति शामको। (पहले दो आहुतियों के बीच में सायं प्रातः ये दो-दो आहुतियाँ डालें) **तत्कथमग्निहोत्रं प्रकम्याऽऽहुतीरिति बहुवचनं तत्राह- अनेकाहेति।** अग्निहोत्रका प्रकरण चलाकर 'आहुतीः' इस प्रकार बहुवचन कैसे? इस पर कहते हैं- **अनेकाहप्रयोगापेक्षयाहुतीरिति बहु-वचनम्।** अनेक दिनतक होनेवाले प्रयोगकी अपेक्षासे यहाँ 'आहुतीः' इस बहुवचनका प्रयोग किया गया है।। २।। **अनेकष्वहःसु प्रयोगानुष्ठा-नानि तद्पेक्षयेत्यर्थः।। २।।** अनेक दिनोंमें प्रयोग किये गये अनुष्ठानों की अपेक्षा से बहुवचन है।। २।।

एष सम्यगाहुतिप्रक्षेपादिलक्षणः कर्ममार्गो लोकप्राप्तये पन्था-स्तस्य च सम्यक्करणं दुष्करम्। विपत्तयस्त्वनेका भवन्ति। कथम्। यह यथाविधि आहुतियोंका प्रक्षेप लक्षणवाला कर्ममार्ग स्वर्गलोक आदि प्राप्तिके लिए मार्ग (साधन) है। उसका यथावत् अनुष्ठान दुष्कर है। क्योंकि इसमें अनेकों विपत्तियाँ होती हैं। वह कैसे सो बतलाते हैं-

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमास-
मचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च।
अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुत-
मासप्तमांस्तस्य लोकान्हिनस्ति।। ३।।

यस्य अग्निहोत्रं अदर्शं अपौर्णमासं अचातुर्मास्यं अनाग्रयणं अतिथिवर्जितं च– जिसका अग्निहोत्र दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य और आग्रयण– इन कर्मोंसे रहित तथा अतिथिपूजनसे रहित है। **अहुतं अवैश्वदेवं अविधिना हुतं**– और बीचमें हवन न किया हो या वैश्वदेव कर्मसे रहित हो या विधि- पूर्वक हवन न किया हो, **तस्य आसप्तमान् लोकान् हिनस्ति**– उसकी सात पीढ़ियोंका वह नाश कर देता है।। ३।।

यस्याग्निहोत्रिणोऽग्निहोत्रमदर्शं दर्शाख्येन कर्मणा वर्जितम्। अग्निहोत्रिणोऽवश्यकर्तव्यत्वाद्दर्शस्य। अग्निहोत्रसम्बन्ध्यग्निहोत्रविशेषण–मिव भवति। तदक्रियमाणमित्येतत्। जिस अग्निहोत्रीका अग्निहोत्र कर्म अदर्श यानी दर्शनामक कर्मसे रहित है। (अमावास्याको समाप्त होनेवाला यज्ञको दर्श और पूर्णमासीको समाप्त होनेवाला यज्ञको पौर्णमास कहते हैं। क्योंकि अग्नि–होत्रियोंको दर्शकर्म अवश्य करना चाहिए। अग्निहोत्रसे सम्बन्ध रखनेवाला दर्श अग्निहोत्रके विशेषणके समान होता है। अतः जिसके द्वारा इसका अनुष्ठान नहीं किया गया। **दर्शस्याग्निहोत्राङ्गत्वे प्रमाणा–भावात्कथं तदकरणमग्निहोत्रस्य विपत्तिरित्याशंक्य यावज्जीवचोदनावशादग्नि–होत्रिणोऽवश्यकर्तव्यत्वादकरणं भवेद्विपत्तिरित्यभिप्रेत्य विशेषणम्।** दर्श अग्निहोत्रका अंग है– इसमें कोई प्रमाण नहीं है। तो उसके नहीं करनेसे अग्निहोत्री के लिए विपत्ति कैसे? इस प्रकार आशंका करके कहते हैं कि जीवनपर्यन्त चोदना (विधि) के कारण अग्निहोत्री के द्वारा अवश्य कर्तव्य होने से, उसका अनुष्ठान न करना विपत्ति (प्रत्यवाय) हो सकती है। इस अभिप्रायसे विशेषण कहा है। **तथाऽपौर्णमासमित्यादिष्वप्यग्निहोत्रविशेषणत्वं द्रष्टव्यम्। अग्निहोत्रा–ङ्गत्वस्याविशिष्टत्वात्।** इसी प्रकार 'अपौर्णमासम्' आदिमें भी अग्हिोत्र का विशेषणत्व समझना चाहिए। क्योंकि अग्निहोत्रका अंग होना पौर्णमास आदिके लिए सामान्य है। **अपौर्णमासं पौर्णमासकर्म–वर्जितमचातुर्मास्यं चातुर्मास्यकर्मवर्जितमनाग्रयणमाग्रयणं शरदादि कर्तव्य तच्च न क्रियते यस्य।** अतः जिनका अग्निहोत्र अपौर्णमास

यानी पौर्णमास कर्मसे रहित है, अचातुर्मास्य अर्थात चातुर्मास्य कर्मसे रहित है, (चातुर्मास्य यज्ञ द्विविध है- स्वतंत्र और राजसूयांतर्गत। स्वतन्त्र चातुर्मास्य अग्निहोत्रकी भांति नित्यकर्म है। चातुर्मासय में चार पर्वोंका उल्लेख है। वैश्वदेव, वरुण प्रधास, साकमेघ, शुनासीरीय।) शरद आदि ऋतुओंमें (नवीन अन्नसे) किया जानेवाला आग्रयण कर्म है वह जिस अग्निहोत्रका नहीं किया जाता वह अनाग्रयण है, **शरदादिषु नूतनान्नेन कर्तव्यमाग्रयणं कर्म।** शरत् आदि ऋतुओंमें नूतन अन्नसे कियेजानेवाला कर्मको आग्रयण कर्म कहते हैं। **तथातिथिवर्जितं चातिथिपूजनं चाहन्यहन्यक्रियमाणं यस्य, स्वयं सम्य-गग्निहोत्रकालेऽहुतम्।** तथा अतिथिवर्जितं यानी जिस अग्निहोत्रमें प्रतिदिन अथिथिपूजन नहीं किया गया, अहुतम् अर्थात् अग्निहोत्रके समयमें स्वयं विधिपूर्वक हवन नहीं किया गया हो। **अदर्शादिवदवैश्व-देवं वैश्वदेवकर्मवर्जितं** दर्शादिसे रहितके समान वैश्वदेवकर्मसे रहित अवैश्वदेव, **अदर्शादिवदवैश्वदेवमिति विशेषणम्। वैश्वदेस्याग्निहोत्रानंगत्वेऽप्या-वश्यकत्वादित्यर्थः।** अदर्श आदिके समान वैश्वदेव भी अग्निहोत्रका विशेषण है। यद्यपि वैश्वदेव अग्निहोत्रका अंग नहीं है, तथापि आवश्यक है। (दर्श हवनके समान बलिवैश्वदेव नित्यकर्म होता है जिसमें देवता पितर आदिके लिए घी मिलाकर घरमें पक्व अन्नकी आहूति दी जाती है और गाय, कौआ, चींटी, कुत्तों आदिको अन्न दिया जाता है।) **हूयमानमप्यविधिना हुतं न यथाहुतमित्येतत्।** हवन करने पर भी विधिपूर्वक न किया गया हो तो वह अविधिना हुत है अर्थात् जिस विधिसे करना चाहिए वैसे नहीं किया। **एवं दुःसम्पादितमसम्पादित-मग्निहोत्राद्युपलक्षितं कर्म किं करोतीत्युच्यत आसप्तमान्सप्तमसहितां-स्तस्य कर्तुर्लोकान्हिनस्ति हिनस्तीवाऽऽयासमात्रफलत्वात्।** इस प्रकार अनुचित रीतिसे किया हुआ अथव बिना किया हुआ अग्निहोत्र आदिसे उपलक्षित कर्म क्या करता है, इसपर कहते हैं कि उस कर्ताके सप्तम लोक पर्यन्त संपूर्ण लोकोंको नष्ट-सा कर देता है। केवल परिश्रम मात्र फल होता है। **सम्यक्क्रियमाणेषु हि कर्मसु कर्म-परिणामानुरूपेण भूरादयः सत्यन्ताः सप्त लोकाः फलं प्राप्यन्ते।**

यथावत् कर्मोंका अनुष्ठान किया जानेपर ही कर्मफलके अनुसार भूलोकसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त सात लोक फलरूपसे प्राप्त होते हैं। **ते लोका एवंभूतेनाग्निहोत्रादिकर्मणा त्वप्राप्यत्वाद्धिंस्यन्त इव।** इस प्रकारके (अदर्शादि प्रकारके) अग्निहोत्रादि कर्मसे वे लोक प्राप्य न होने के कारण मानो नाशको प्राप्त होते हैं। **आयासमात्रं त्वव्यभिचारीत्यतो हिनस्तीत्युच्यते।** परिश्रमका व्यभिचार (अभाव) नहीं होता है, यानी परिश्रम तो होता ही है। इससे कि सातलोंकोंको नष्ट कर देता है, ऐसा कहा है। **पिण्डोदकदानेन पित्रादीनां त्रयाणामुपकरोति यजमानः पुत्रादीनां च त्रयाणां ग्रासदिदानेन। ततो मध्यवर्तिना यजमानेन सम्ब- ध्यमानाः पूर्वे त्रय उत्तरे च त्रयो गृह्यन्ते इत्याह- पिण्डदानादीति।। ३।।** यजमान पिण्ड और जल दानसे पिता आदि तीनोंका और भोजनादिसे पुत्रादि तीनोंका उपकार करता है। उनके बीच स्वयं यजमानके साथ सम्बन्धित पहले तीन और आगेके तीनोंका ग्रहण किया जाता है। इसे कहते हैं- **पिण्डदानाद्यनुग्रहेण वा सम्बध्यमानाः पितृपितामहप्रपितामहाः पुत्रपौत्रप्रपौत्राः स्वात्मोपकाराः सप्त लोका उक्तप्रकारेणाग्निहोत्रादिना न भवन्तीति हिंस्यन्त इत्युच्यते।। ३।।** पिण्डदान आदि अनुग्रहसे यजमानसे सम्बन्धित पिता, पितामह, प्रपितामह, पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र अपने सहित अपना उपकारक सात लोक, कहे गये प्रकारसे अग्निहोत्रसे प्राप्त नहीं होते हैं; इसलिए नष्ट कर दिये जाते हैं ऐसा कहा जाता है।। ३।।

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्तजिह्वाः।। ४।।

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वाः। काली,

कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूर्मवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरूचि देवी- ये उस अग्निकी लपलपाती हुई सात जिह्वाएँ हैं।। ४।।

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः। कालाद्या विश्वरुच्यन्ता लेलायमाना अग्निर्हविराहुतिग्रसनार्था एताः सप्त जिह्वाः।। ४।। काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूर्मवर्णा, स्फुलिंगिनी और देवी विश्वरूचि- ये उस अग्निकी लपलपाती हुई सात जिह्वाएँ हैं। कालीसे लेकर विश्वरुचितक- ये अग्निकी सात लपलपाती हुई जिह्वाएँ यजमान द्वारा दी गई आहुतियोंके भक्षणके लिए मानी गयी हैं।। ४।।

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु
यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्।
तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो
यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः।। ५।।

यः भ्राजमानेषु एतेषु यथाकालं च आहुतयः हि आददायन् चरते- जो अग्निहोत्री पुरुष इन देदीप्यमान अग्निशिखाओंमें यथा-समय आहुतियाँ देता हुआ अग्निहात्रादि कर्मका आचरण करता है, **तं एताः सूर्यस्य रश्मयः यत्र देवानां पतिः एकोधिवासः (तत्र) नयन्ति-** उस यजमानको ये आहुतियाँ सूर्यकी किरणें होकर वहाँ ले जाती हैं जहाँ देवताओंका एकमात्र स्वामी इन्द्र रहता है।। ५।।

एतेष्वग्निजिह्वाभेदेषु योऽग्निहोत्री चरते कर्माऽऽचरत्यग्निहो-त्रादि भ्राजमानेषु दीप्यमानेषु यथाकालं च यस्य कर्मणो यः कालस्त-त्कालं यथाकालं यजमानमाददायन्नाददाना आहुतयो यजमानेन निर्व-र्तितास्तं नयन्ति प्रापयन्त्येता आहुतयो या इमा अनेन निर्वर्तिताः सूर्यस्य रश्मयो भूत्वा रश्मिद्वारैरित्यर्थः। यत्र यस्मिन्स्वर्गे देवानां पति-

रिन्द्रः एकः सर्वानुपरि अधिवसतीत्यधिवासः। जो अग्निहोत्री इन भ्राजमान यानी दीप्तिमान् अग्निजिह्वाके भेदोंसे यथा काल अर्थात् जिस कर्मका जो काल है उस कालका अतिक्रमण न करते हुए अग्निहोत्र आदि कर्मोंका आचरण करता है, उस यजमानको आददायन् अर्थात् यजमानके द्वारा दी हुई वे आहुतियाँ सूर्यकी किरणें बनकर अर्थात् सूर्यकी किरणों द्वारा वहाँ पहुँचा देती है जहाँ स्वर्गलोकमें देवताओंका एकमात्र पति इन्द्र सबके ऊपर रहता है।। ५।।

कथं सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्तीत्युच्यते– वे आहुतियाँ सूर्यकी किरणोंद्वारा यजमानको किस प्रकार ले जाती हैं, सो बतलाया जाता है–

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य
एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः।। ६।।

सुवर्चसः आहुतयः एहि एहि इति (आह्वयन्न्यः) एष वः पुण्यः सुकृतः ब्रह्मलोकः (इति) प्रियां वाचं अभिवदन्त्यः अर्चयन्त्यः तं यजमानं वहन्ति। दीप्तिमती आहुतियाँ 'आओ आओ यह तुम्हारे सुकृतसे प्राप्त हुआ पवित्र ब्रह्मलोक (स्वर्ग) है' एसी प्रियवाणी कहकर और उसका अर्चन करती हुई उस यजमानको ले जाती हैं।। ६।।

एह्येहीत्याह्वयन्त्यः सुवर्चसो दीप्तिमत्यः किं च प्रियामिष्टां वाचं स्तुत्यादिलक्षणामभिवदन्त्य उच्चारयन्त्योऽर्चयन्त्यः पूजयन्त्यश्चैव वो युष्माकं पुण्यः सुकृतो यथा ब्रह्मलोकः फलरूपः। एवं प्रियां वाचमभिवदन्त्यो वहन्तीत्यर्थः। ब्रह्मलोकः स्वर्गः प्रकरणात्।। ६।। वे

दीप्तिमती आहुतियाँ ‘आइये आइये’ इस प्रकार पुकारती हुई और स्तुति आदि लक्षणवाली वाणी बोलती हुई तथा अर्चना यानी पूजा करती हुई बोलती है कि यह तुम्हारे सुकृतसे प्राप्त हुआ पुण्य यानी पवित्र ब्रह्मलोक है। प्रकरणसे ब्रह्मलोकका अर्थ स्वर्ग है।। ६ ।।
आहुतयो यजमानं वहन्तीति सम्बन्धः।। ६ ।। आहुतियाँ यजमानको ले जाते हैं इस प्रकार संबन्ध है।। ६ ।।

एतच्च ज्ञानरहितं कर्मैतावत्फलमविद्याकामकर्मकार्यमतोऽसारं दुःखमूलमिति निन्द्यते– यह ज्ञानरहित कर्म इतने ही फलवाला है। यह अविद्या, काम और कर्मका कार्य है, अतः असार और दुःखकी जड़ है। इस प्रकार निन्दा की जाती है–

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति।। ७ ।।

येषु अष्टादशं अवरं कर्म उक्तं एते यज्ञरूपा प्लवाः हि अदृढाः – जिनमें अट्ठारह निकृष्ट आश्रय कहा गया है, ये यज्ञरूप कर्म प्लव यानी विनाशि हैं, क्योंकि अदृढ है। **ये मूढा एतत् श्रेयः (इति) अभिनन्दन्ति ते जरामृत्युं पुनः एव अपियन्ति–** जो मूर्ख (अज्ञानी) यही श्रेय है, इस प्रकार समझकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, वे पुनः पुनः जरामृत्युको प्राप्त होते हैं।। ७ ।।

प्लवा विनाशिन इत्यर्थः। हि यस्मादेतेऽदृढा अस्थिरा यज्ञरूपा यज्ञस्य रूपाणि यज्ञरूपा यज्ञनिर्वर्तका अष्टादशाष्टादशसंख्याकाः षोडशर्त्विजः पत्नी यजमानश्चेत्यष्टादश, एतदाश्रयं कर्मोक्तं कथितं शास्त्रेण येष्वष्टादशस्ववरं केवलं ज्ञानवर्जितं कर्म अतस्तेषामवरकर्मा–श्रयाणामष्टादशानामदृढतया प्लवत्वात्प्लवते सह फलेन तत्साध्यं कर्म कुण्डविनाशादिव क्षीरदध्यादीनां तत्स्थानां नाशः। प्लव अर्थात् विनाशी

है। क्योंकि ये अदृढ यानी अस्थिर हैं। यज्ञरूप- यज्ञके रूप अर्थात् यज्ञके निवर्तक संख्यामें अठारह हैं। षोलह ऋत्विक् यजमान और उसकी पत्नी इस प्रकार अहारह हैं। कर्म इनके आश्रित है ऐसा शास्त्रमें कहा गया है। जिन अठारहोंमें अवर अर्थात् उपासना वर्जित होनेसे केवल कर्म आश्रित है, अतः उन अवर कर्मके अठारह आश्रयोंका अदृढ होने के कारण विनाशी होनेसे, उनसे निष्पन्न कर्मोंका फलके सहित नाश होता है, जैसे कुण्डके नष्ट होनेसे उनमें स्थित दूध और दही आदिका नाश हो जाता है। **यत एवमेतत्कर्म श्रेयः श्रेयःकरणमिति येऽभिनन्दन्त्यभिहृष्यन्त्यविवेकिनो मूढा अतस्ते जरां च मृत्युं च जरामृत्युं किञ्चित्कालं स्वर्गे स्थित्वा पुनरेवापियन्ति भूयोऽपि गच्छन्ति।। ७।।** क्योंकि ऐसी बात है, इसलिए जो अविवेकी मूढ पुरुष 'यह कर्म श्रेय अर्थात् श्रेयका साधन है' ऐसा मानकर हर्षित होते हैं वे जरा और मृत्युको प्राप्त होते हैं। अर्थात् कुछ समय स्वर्गमें रहकर फिर भी उसी जन्म-मरणरूप चक्रको प्राप्त हो जाते हैं।। ७।।

किञ्च- और भी

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियनित मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।। ८।।

अविद्यायां अन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः मूढाः यथा अन्धेन नीयमानाः अन्धा इव जङ्घन्यमानाः परियन्ति- अविद्याके बीचमें रहनेवाले अर्थात् अज्ञानी किन्तु अपनेको बड़ा

बुद्धिमान् तथा विद्वान् माननेवाले वे मूर्ख अन्धेसे ले जाये जाते हुए अन्धेके समान पीडित होकर भटकते रहते हैं।। ८।।

अविद्यायामन्तरे मध्ये वर्तमाना अविवेकप्रायाः स्वयं वयमेव धीरा धीमन्तः पण्डिता विदितवेदितव्याश्चेति मन्यमाना आत्मानं सम्भावयन्तस्ते च जङ्घन्यमाना जरोरोगाद्यनेकानर्थव्रातैः हन्यमाना भृशं पीड्यमानाः परियन्ति विभ्रमन्ति मूढाः। अविद्याके मध्यमें रहनेवाले बहुधा अविवेकी किन्तु 'हम ही बड़े बुद्धिमान् और पण्डित हैं अर्थात् ज्ञेय वस्तुको जाननेवाले हैं' ऐसा मानकर अपनेको सम्मानित करनेवाले वे मूर्ख लोग; जरा, रोग आदि अनेक अर्थजाल से जंघन्यमान यानी हन्यमान अर्थात् पीडित होते हुए सब ओर भटकते रहते हैं। **स्वयमेवेति- तत्त्वदर्श्युपदेशानपेक्षतया स्वमनोरथेनैवेत्यर्थः।** स्वयं अर्थात् तत्त्वदर्शी उपदेशके बिना अपने मनोरथसे। **दर्शनवर्जितत्वादन्धे- नैवाचक्षुष्केणैव नीयमानाः प्रदर्श्यमानमार्गा यथा लोकेऽन्धा अक्षिरहिता गर्तकण्टकादौ पतन्ति तद्वत्।। ८।।** जिस प्रकार लोकमें दृष्टिहीन होनेके कारण अन्धे अर्थात् नेत्रहीन पुरुष गड्ढे और काँटे आदिमें गिर जाते हैं उसी प्रकार (वे भी पीडा उठाते रहते हैं)।। ८।।

किंच- और भी

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना
वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागा-
त्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते।। ९।।

बहुधा अविद्यायां वर्तमानाः बालाः वयं कृतार्थाः इति अभिमन्यन्ति- बहुधा अविद्यामें ही रहनेवाले वे वालक-अज्ञानी, 'हम कृतार्थ हैं' इस प्रकार अभिमान करते हैं। **यत् कर्मिणः रागात्**

(तत्त्वं) न प्रवेदयन्ति– क्योंकि एसी बात है इसलिए कर्मी कर्मफलमें आसक्तिके कारण तत्त्वको नहीं जान पाते हैं। **तेन आतुराः क्षीण–लोकात् च्यवन्ते**– इसलिए वे दुःखसे पीड़ित होकर कर्मफलके क्षीण हो जाने पर स्वर्गसे गिर जाते हैं।। ६।।

अविद्यायां बहुधा बहुप्रकारं वर्तमाना वयमेव कृतार्थाः कृत–प्रयोजन इत्येवभिमन्यन्त्यभिमानं कुर्वन्ति बाला अज्ञानिनः यद्यस्मादेवं कर्मिणो न प्रवेदयन्ति तत्त्वं न जानन्ति रागात्कर्मफलरागाभिभवनिमित्तं तेन काउणेनाऽऽतुरा दुःखार्ताः सन्तः क्षीणलोकाः क्षीणकर्मफलाः स्वर्गलोकाच्च्यवन्ते।। ६।। अविद्यामें अनेक प्रकारसे रहते हुए वे बालक–अज्ञानी 'केवल हम ही कृतार्थ हैं अर्थात् अपने प्रयोजनको प्राप्त कर लिए हैं' इसी प्रकार अभिमान करते हैं। यत् अर्थात् यस्मात्– क्योंकि इस प्रकार वे कर्मी, कर्मफलमें आसक्तिसे उनकी बुद्धि अभिभूत होनेके कारण, तत्त्वको नहीं जान पाते हैं। इसलिए वे आतुर–दुःखार्त होकर कर्मफलके क्षीण हो जानेपर स्वर्गसे गिर जाते हैं।। ६।।

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं
नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वा
इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति।। १०।।

इष्टापूर्तं वरिष्ठं मन्यमानाः प्रमूढाः न अन्यत् श्रेयः वेदयन्ते– इष्ट और पूर्त कर्मोंको ही सर्वोत्तम माननेवाले वे महामूर्ख किसी अन्य वस्तुको श्रेयस्कर नहीं समझते। **ते नाकस्य पृष्ठे सुकृते अनुभूत्वा इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति**– वे स्वर्गलोकके उच्च

स्थानमें सुकृत अर्थात् दिव्यशरीरमें कर्मफलका अनुभव कर इसी मनुष्य- लोकमें अथवा इससे निकृष्ट पशुपक्षी योनियोंमें प्रवेश करते हैं।। १०।।

इष्टापूर्तम्। इष्टं यागादि श्रौतं कर्म, पूर्तं वावीकूपातडागादि स्मार्तं मन्यमाना एतदेवातिशयेन पुरुषार्थसाधनं वरिष्ठं प्रधानमिति चिन्तयन्तोऽन्यदात्मज्ञानाख्यं श्रेयःसाधनं न वेदयन्ते न जानन्ति प्रमूढाः पुत्रपशुबन्ध्वादिषु प्रमत्ततया मूढास्ते च नाकस्य स्वर्गस्य पृष्ठ उपरि- स्थाने सुकृते भोगायतनेऽनुभूत्वाऽनुभूय कर्मफलं पुनरिमं लोकं मानु- षमस्माद्धीनतरं वा तिर्यङ्नरकादिलक्षणं यथाकर्मशेषं विशन्ति।। १०।। इष्ट अर्थात् यागादि श्रौतकर्म और पूर्त अर्थात् वापी, कूप, तडागादि स्मार्त कर्म 'ये ही मुख्यरूपसे पुरुषार्थके साधन हैं, अतः ये ही सर्वश्रेष्ठ यानी प्रधान हैं' इस प्रकार चिन्तन करते हुए इससे भिन्न आत्मज्ञानसंज्ञक श्रेयसाधनको नहीं जानते हैं। क्योंकि वे पुत्र, पशु, बन्धु आदियोंमें उन्मत्त (पागल) होनेसे मूर्ख हैं। और वे नाक यानी स्वर्गके उच्च स्थानमें अपने सृकृतमें अर्थात् भोगायतन दिव्यदेहमें कर्मफलका अनुभव कर अपने अवशिष्ट कर्मानुसार फिर इसी मनुष्यलोकमें अथवा इससे निकृष्टतर तिर्यक् नरक आदि योनियोंमें प्रवेश करते हैं यानी जन्म लेते हैं।। १०।। **कं सुखं न भवतीत्यकं दुःखं तन्न विद्यते यस्मिन्नसौ नाकः।** कं सुखको कहते हैं। सुखका अभाव यानी दुःख को अकं कहते हैं। अकं यानी दुःख नहीं है जिसमें वह नाक यानी स्वर्ग है।

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।। ११।।

ये हि शान्ताः विद्वांसः भैक्ष्यचर्यां चरन्तः अरण्ये तपःश्रद्धे उपवसन्ति- उनसे विपरीत जो कोई शमदमादि संपन्न विद्वान् भिक्षा-

वृत्तिका आश्रय लेकर जंगलमें रहते हुए तपस्या यानी आश्रमविहित कर्म और हिरण्यगर्भ आदिकी उपासना करते हैं, **ते विरजाः सूर्य-द्वारेण प्रयान्ति यत्र सः अव्ययात्मा पुरुषः-** वे पापरहित होकर सूर्य उपलक्षित उत्तरायण मार्ग से वहाँ जाते हैं जहाँ वह अमृत और अव्यय पुरुष यानी हिरण्यगर्भ रहता है।। ११।।

केवलकर्मिणां फलमुक्त्वा सगुणब्रह्मज्ञानसहिताश्रमकर्मिणां फलं संसार-गोचरमेव दर्शयति- ये पुनस्तद्विपरीता ज्ञानयुक्ता इत्यादिना। केवल कर्मियोंका फल कहकर सगुणब्रह्मकी उपासनाके साथ आश्रमोचित कर्म करनेवालोंका फल जो संसारको विषय करता है, उसे कहते हैं- **ये पुनस्तद्विपरीता ज्ञानयुक्ता वानप्रस्थाः संन्यासिनश्च तपःश्रद्धे हि तपः स्वाश्रमविहितं कर्म, श्रद्धा हिण्यगर्भादिविषया विद्या ते तपःश्रद्धे उपवसन्ति सेवन्तेऽरण्ये वर्तमानाः सन्तः।** इसके विपरीत जो ज्ञानसम्पन्न वानप्रस्थ और संन्यासी वनमें रहते हुए तप अर्थात् आश्रमविहित कर्म और श्रद्धा अर्थात् हिरण्यगर्भ आदि को विषय करनेवाली उपासना, उन तप और श्रद्धाका सेवन करते हैं, **अरण्ये स्त्रीजनासंकीर्णे देशे।** अरण्य अर्थात् स्त्री और संसारी लोगोंसे रहित देश। **शान्ता उपरतकरणग्रामाः। विद्वांसो गृहस्थाश्च ज्ञानप्रधाना इत्यर्थः।** शान्त अर्थात् जिनके करण समुदाय उपरत हो गये हैं। विद्वान् और उपासना प्रधान गृहस्थ, यह अर्थ है। **भैक्ष्यचर्यां चरन्तः परिग्रहाभावादुपवसन्त्यरण्य इति सम्बन्धः।** परिग्रहके अभावसे भिक्षाचर्याका आचरण करते हुए वन में कर्म और उपासनाका सेवन करते हैं। इस प्रकार पूर्वके साथ संबन्ध है। **सूर्यद्वारेण सूर्योपलक्षितोनोत्तरायणेन पथा ते विरजा विरजसः क्षीण-पुण्यपापकर्माण सन्त इत्यर्थः** विरज यानी पाप और पुण्यकर्म जिनके क्षय हो गये हैं वे सूर्यद्वारसे यानी सूर्य उपलक्षित उत्तरायण मार्ग से, **प्रयान्ति प्रकर्षेण यान्ति यत्र यस्मिन्सत्यलोकादावमृतः स पुरुषः प्रथमजो हिरण्यगर्भो ह्यवयात्माऽव्ययस्वभावो यावत्संसारस्थायी।** जिस

सत्यलोक आदिमें वह अमृत और अव्यय स्वभाव पुरुष हिरण्यगर्भ रहता है वहाँ जाते हैं। जबतक संसार है तबतक हिरण्यगर्भकी स्थिति है, इससे अव्यय है। **एतदन्तास्तु संसारगतयोऽपरविद्यागम्याः।** अपरविद्यासे प्राप्त होनेवाली सांसारिक गतियाँ तो बस यहीं तक है।

ननु एतंमोक्षमिच्छन्ति केचित्। शंका- परन्तु कोई तो इसीको मोक्ष मानते हैं? **न।** समाधान- नहीं। **मुक्तानामिहैव सर्वकामप्रविलयं सर्वात्मभावं च दर्शयन्ति श्रुतयः। ब्रह्मलोकप्राप्तिस्तु देशपरिच्छन्नं फलं ततो न मोक्ष इत्याह- इहैवेति।** जीवित अवस्थामें ही मुक्तपुरुषोंका संपूर्ण कामनाओंका विलय हो जाता है तथा सर्वात्मभावकी प्राप्ति होती है, इस बातको श्रुतियाँ दिखाती है। परंतु ब्रह्मलोककी प्राप्ति तो देशसे परिच्छिन्न फल है। इससे मोक्ष नहीं है। इसे भाष्यकार कहते हैं- **'इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः' (मुं.३.२.२) 'ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति' (मुं.३.२.५) इत्यादि श्रुतिभ्योऽप्रकरणाच्च।** 'उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ यहीं लीन हो जाती हैं' 'वे संयतचित्त धीर पुरुष उस सर्वगत ब्रह्मको सब ओर प्राप्तकर सभीमें समा जाते हैं' इत्यादि श्रुतियोंसे (ब्रह्मज्ञानी जीते जी समस्त कामनाओंसे मुक्त हो जाता है एवं सर्वभावको प्राप्त हो जाता है) यह कहा गया है। और यह मोक्षका प्रकरण भी नहीं है। **अपरविद्याप्रकरणे हि प्रवृत्ते न ह्यकस्मान्मोक्षप्रसङ्गोऽस्ति। विरजस्त्वं त्वापेक्षिकम्।** अपरा विद्याके प्रकरणके चालु रहते हुए अकस्मात् मोक्षका प्रसंग नहीं आ सकता है। और उसकी विरजता (निष्पाप होना) आपेक्षिक है। **समस्तमपरविद्याकार्यं साध्यसाधनलक्षणं क्रियाकारकफलभेदभिन्नं द्वैतमेतावदेव यद्धिरण्यगर्भप्राप्त्यवसानम्।** साध्य-साधन लक्षणवाली अपरा विद्याका समस्त कार्य, क्रिया-कारक-फलभेदसे भिन्न और द्वैत इतना ही है, जिसका पर्यव- सान हिरण्यगर्भकी प्राप्ति है। **तथा च मनुनोक्तं स्थावराद्यां संसारगतिमनुक्रामता 'ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च। उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहु-**

र्मनीषिणः' (१२.५) इति।। ११।। स्थावरोंसे लेकर संसारकी गतिकी गणना करते हुए मनुजीने भी इस प्रकार कहा है- 'ब्रह्मा, विश्वस्रष्टा मरीचि आदि, यमराज, महत्तत्त्व-सूत्रात्मा और अव्यक्त आदिको प्राप्त होना, इसे विद्वानोंने श्रेष्ठ सात्त्विकी गति बतलायी है।' **ब्रह्मा चतुर्मुखः। विश्वसृजः प्रजापतयो मरीचिप्रभृतयः। धर्मो यमः। महान्सूत्रात्मा। अव्यक्तं त्रिगुणात्मिका प्रकृतिः। सात्त्विकी सत्त्वपरिणामज्ञानसहितकर्मफलभूता-मित्यर्थः।। ११।।** चतुर्मुखको ब्रह्मा, मरीचि आदि प्रजापतियोंको विश्वस्रष्टा, यम देवता को धर्म, सूत्रात्मा हिरण्यगर्भको महतत्त्व, त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं। सत्त्वगुणके परिणाम अज्ञानके साथ कर्मके फलरूप गतिको सात्त्विकी गति कहते हैं।। ११।।

अथेदानीमस्मात्साध्यासाधनरूपात्सर्वस्मात्संसारद्विरक्तस्य परस्यां विद्यायामधिकारप्रदर्शनार्थमिदमुच्यते- अब इस साध्यसाधनरूप संपूर्ण संसारसे विरक्त पुरुषका परा विद्यामें अधिकार दिखानेके लिए आगेका मंत्र कहा जाता है-

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोतियं ब्रह्मनिष्ठम्।। १२।।

कर्मचितान् लोकान् परीक्ष्य ब्राह्मणः निर्वेदं आयात्- कर्मसे संपादित लोकोंकी परीक्षा कर ब्राह्मण नैष्कर्म्यको प्राप्त हो जाए। **अकृतः कृतेन नास्ति-** क्योंकि अकृत यानी कार्यसे असंपादित नित्य आत्मा कृतेन यानी कर्मोंसे प्राप्त नहीं होता है। **तत् विज्ञानार्थं सः समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरुं एव अभिगच्छेत्-** अतः उस नित्य आत्माका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हाथमें समिधा लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें जाएँ।। १२।।

परीक्ष्य यदेतदृगवेदाद्यपरविद्याविषयं स्वाभाविक्यविद्याकामकर्म-दोषवत्पुरुषानुष्ठेयमविद्यादिदोषवन्तमेव पुरुषं प्रति विहितत्वात्तदनुष्ठान-

कार्यभूताश्च लोका ये दक्षिणोत्तरमार्गलक्षणाः फलभूताः, ये च विहि-ताकरणप्रतिषेधातिक्रमदोषसाध्या नरकतिर्यक्प्रेतलक्षणास्तानेतान्परीक्ष्य प्रत्यक्षानुमानोपमानागमैः सर्वतो याथात्म्येनावधार्य। यह जो ऋग्वेदादि अपरविद्याके विषय हैं, तथा स्वभावसिद्ध अविद्या, काम, कर्म दोषोंसे युक्त पुरुषके द्वारा अनुष्ठेय है, तथा अविद्यादि दोषवाले पुरुषके प्रति विहित होनेसे उसके अनुष्ठानके कार्यरूप-फलरूप जो लोक हैं, जो फलरूपसे दक्षिण और उत्तर मार्ग लक्षणवाले हैं, तथा विहित कर्मके न करनेसे एवं प्रतिषिद्धके करनेके दोषसे प्राप्त होनेवाली जो नरक, तिर्यक् तथा प्रेतादि योनियाँ हैं, उन इन सभीकी परीक्षा कर अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम इन चारों प्रमाणोंसे सब प्रकार उनका यथावत् निश्चय करके। **ऐहिककर्मफलस्य पुत्रादेर्नाशविषयं प्रत्यक्षं, विमतं अनित्यं कृतकत्वाद् घटवदित्यनुमानमामुष्मिकनाशविषयम्। तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत इत्याद्यागमस्तैरनित्यत्वेन सर्वात्मनाऽवधार्येत्यर्थः।** इस लोक से सम्बन्धित कर्मोंका फल पुत्र आदिका नाश प्रत्यक्ष प्रमाणसे, विमत स्वर्गादि, अनित्य है, कार्य होनेसे, घट आदिके समान इस अनुमानसे आमुष्मिक स्वर्गादि नाशवान् है, तथा 'जैसे यहाँ कर्मसे संपादित फलका क्षय होता है वैसे स्वर्गादि फल नाशवान् है' इत्यादि आगमसे कर्मफलोंको अनित्यरूपसे पूर्णतया निश्चय करके। **लोकान्संसारगतिभूतानव्यक्तदिस्थावरान्तान्व्याकृताव्याकृतलक्षणा-नबीजाङ्कुरवदितरेतरोत्पत्तिनिमित्ताननेकानर्थशतसहस्रसङ्कुलान्कदली-गर्भवदसारान्मायामरीच्युदकगन्धर्वनगराकारस्वप्नजलबुद्बुद्फेनसमान्प्रति -क्षणप्रध्वंसान्[१]पृष्ठतः कृत्वाऽविद्याकामदोषप्रवर्तितकर्मचितान्धर्माधर्मनिर्व-र्तितानित्येतद्ब्राह्मणस्यैव विशेशतोऽधिकारः सर्वत्यागेन ब्रह्मविद्यायामिति ब्राह्मणग्रहणम्।** परीक्ष्य लोकान् लोकोंको अर्थात् संसारगतिरूप, स्थावरसे लेकर अव्याकृत लक्षणवाले, बीज अंकुरके समान परस्पर उत्पत्तिके कारण, अनेक सौ हजारों अनर्थोंसे व्याप्त, केलेवृक्षके भीतरी भागके समान सारहीन, माया, मृगजल और गन्धर्वनरगके आकारवाले, स्वप्न, जलके बुलबुले और फेनके समान क्षण-क्षणमें

नष्ट होनेवाले, अविद्या और कामनारूप दोषोंसे होनेवाले कर्मोंसे संपादित, धर्म और अधर्म से होनेवाले इन लोकोंको यानी कर्मफलों का अनादर कर (ब्राह्मण वैराग्यको प्राप्त करे)। क्योंकि ब्राह्मणका संपूर्ण त्यागके द्वारा ब्रह्मविद्यामें विशेषरूपसे अधिकार है, इसलिए यहाँ ब्राह्मण पदका ग्रहण किया गया है। १.**(टिप्पणी- पृष्ठतः कृत्वा अनादृत्य) 'नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं यथैकता समता सत्यता च। शीलं स्थिति र्दण्डनिधानमार्जवं ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः' इति स्मृतेब्राह्मणस्यैवाधिकार इत्यर्थः। (शांतिपर्व मोक्षधर्म)** एकता, समता, सत्यता, अद्रोह, आदि शील, स्थिति अर्थात् मर्यादाका अनतिक्रमण, दण्डनिधानं यानी प्राणियोंको पीड़ा न देना, सरलता, उन उन क्रियायोंसे उपरमता; ये ब्राह्मणके धन है, इनसे बढकर ब्राह्मणके लिए और कोई धन नहीं है। इस स्मृतिसे त्याग अर्थात् संन्यासमें ब्राह्मणका ही अधिकार है। (**अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा। अनुग्रह- श्च दानं च शीलमेतत्प्रशस्यते।। यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्मपौरुषम्। अपत्रपेत वा येन न तत्कुर्यात् कथंचन।। तत्तु कर्म तथा कुर्याद्येन श्लाघ्येत संसदि। शील समासेनैतत्ते कथितं कुरुसत्तम। म.भा. शां. प.**)

परीक्ष्यलोकान्किं कुर्यादित्युच्यते निर्वेदं निःपूर्वो विदिरत्र वैरा- ग्यार्थे वैराग्यमायात्कुर्यादित्येतत्। कर्मफलोंकी परीक्षा करके वह क्या करें, सो बतलाते हैं- निर्वेदता को प्राप्त करें। यहाँ नि पूर्वक विद् धातु वैराग्य अर्थमें है; अतः तात्पर्य यह है कि वैराग्य प्राप्त करें। **स वैराग्यप्रकारः प्रदर्श्यते। इह संसारे नास्ति कश्चिदप्यकृतः पदार्थः। सर्व एव हि लोकाः कर्मचिताः कर्मकृतत्वाच्चानित्याः, न नित्यं किंचि- दस्तीत्यभिप्रायः।** वह वैराग्यका प्रकार दिखलाया जाता है। इस संसारमें कोई भी अकृत (नित्य) पदार्थ नहीं है। कर्मसे सम्पादित समस्त लोक अनित्य हैं क्योंकि वे कर्मसे उत्पन्न है। अभिप्राय यह है कि संसारमें नित्य कुछ भी नहीं है। **सर्वं तु कर्मानित्यस्यैव साधनम्। यस्माच्चतुर्विधमेव हि सर्वं कर्म कार्यमुत्पाद्यमाप्यं संस्कार्यं विकार्यं वा। नातः परं कर्मणो विशेषोऽस्ति।** सारा कर्म अनित्य फलका साधन हैं। क्योंकि सारे कर्मके कार्य या तो उत्पाद्य है, या

आप्य है या संस्कार्य है या विकार्य है। इससे अतिरिक्त कोई विशेष कर्म नहीं है। **अहं च नित्येन अमृतेनाभयेन कूटस्थेनाचलेन ध्रुवेणार्थेनार्थी न तद्विपरीतेन।** किन्तु मैं तो नित्य, अमृत, अभय, कूटस्थ, अचल, ध्रुव पदार्थका प्रार्थी हूँ। उससे विपरीत अनित्य पदार्थका प्रार्थी नहीं हूँ। **कूटस्थेन परिणामरहितेनाचलेन स्पन्दरहितेन ध्रुवेण प्रयन्तरहितेनाहमर्थी।** कूटस्थ अर्थात् परिणामसे रहित, अचल अर्थात् स्पन्द(गति)से रहित, ध्रुव अर्थात् प्रयत्नसे रहित वस्तुका प्रार्थी हूँ। **अतः किं कृतेन कर्मणायासबहुलेनानर्थसाधनेनेत्येवं निर्विण्णोऽभयं शिवमकृतं नित्यं पदं यत्तद्विज्ञानार्थं विशेषेणाधिगममार्थं स निर्विण्णे ब्राह्मणो गुरुमेवाचार्यं शमदमदयादिसम्पन्नमभिगच्छेत्।** इसलिए अधिक प्रयत्नसे होनेवाले कृतेन अर्थात् कर्मोंसे मुझे क्या प्रयोजन है? इस प्रकार विरक्त होकर जो अभय, शिव, अकृत और नित्यपद है उसके विज्ञानके लिए यानी विशेषरूपसे जाननेके लिए वह विरक्त ब्राह्मण शम-दमादि संपन्न गुरु यानी आचार्यके पास ही जाए। **शास्त्रज्ञोऽपि स्वातन्त्र्येण ब्रह्माानान्वेषणं न कुर्यादित्येतद्गुरुमेवेत्यवधारणफलम्।** शास्त्रज्ञ होनेपर भी स्वतन्त्रतापूर्वक ब्रह्मज्ञानका अन्वेषण न करे। यही 'गुरुके पास अवश्य जाए' इन पदोंसे निश्चयार्थक फल है। **समित्पाणिः समिद्भारगृहीतहस्तः श्रोत्रियमध्ययनश्रुतार्थसम्पन्नं ब्रह्मनिष्ठं हित्वा सर्वकर्माणि केवलेऽद्वये ब्रह्मणि निष्ठा यस्य योऽयं ब्रह्मनिष्ठोजपनिष्ठस्तपोनिष्ठ इति यद्वत्।** समित्पाणि अर्थात् हाथमें समिधाओंका भार लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके पास जाए। श्रोत्रिय अर्थात् गुरुमुखसे अध्ययन द्वारा श्रवण कियागया शास्त्रके अर्थज्ञानसे सम्पन्न। ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् संपूर्ण कर्मोंका त्याग कर केवल अद्वितीय ब्रह्ममें जिसकी निष्ठा है। जपानिष्ठ, तपोनिष्ठ आदिके समान ही यह ब्रह्मनिष्ठ शब्द है। **समित्पाणिरिति विनयोपलक्षणम्।। १२।।** समित्पाणि शब्द विनयका उपलक्षण है। अर्थात् हाथमें समिधा लिए विनयके साथ गुरुके पास

जाए। **न हि कर्मिणो ब्रह्मनिष्ठता सम्भवति कर्मात्मज्ञानयोर्विरोधात्।** कर्म करनेवाले पुरुषकी ब्रह्मनिष्ठा संभव नहीं है, क्योंकि कर्म और आत्मज्ञानका परस्पर विरोध है। **स तं गुरुं विधिवदुपसन्नः प्रसाद्य पृच्छेदक्षरं पुरुषं सत्यम्।। १२।।** वह विरक्त उस श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास विधिपूर्वक जाकर उन्हें सेवा आदिसे प्रसन्न करके सत्य, अक्षर पुरुषके संबन्धमें प्रश्न करें।। १२।।

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्य-
क्प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।। १३।।

इति प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः।। १-२।।

इति प्रथममुण्डकं समाप्तम्।। १।।

प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय उपसन्नाय तस्मै सः विद्वान् तां ब्रह्मविद्यां सम्यक् प्रोवाच येन अक्षरं सत्यं पुरुष वेद- पूर्णरूपसे शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, अपने पास आये हुए उस शिष्यको वह विद्वान् आचार्य उस ब्रह्मविद्याका यथाशास्त्र तत्त्वतः उपदेश करे जिससे उस सत्य, अक्षर पुरुषका ज्ञान होता है।।

तस्मै स विद्वान्गुरुर्ब्रह्मविदुपसन्नायोपगताय सम्यग्यथाशास्त्र-मित्येतत्। प्रशान्तचित्तायोपरतदर्पादिदोषाय शमान्विताय बाह्येन्द्रियोप-रमेण च युक्ताय सर्वतो विरक्तायेत्येतत्। वह विद्वान् गुरु अपने पास आये हुए उस सम्यक् यानी यथाशास्त्र प्रशान्तचित्त अर्थात् गर्व आदि दोषोंसे रहित तथा शमसे युक्त अर्थात् बाह्य इन्द्रियोंकी उपरमतासे युक्त यानी पूर्णरूपसे विरक्त शिष्यको, **येन विज्ञानेन यया विद्यया परयाक्षरमद्रेश्यादिविशेषणं तदेवाक्षरं पुरुषशब्दवाच्यं पूर्णत्वात् पुरिशय-नाच्च सत्यं तदेव परमार्थस्वाभाव्यादक्षरं चाक्षरणादक्षतत्वादक्षयत्वाच्च वेद विजानाति तां ब्रह्मविद्यां तत्त्वतो यथावत्प्रोवाच प्रब्रूयादित्यर्थः।**

आचार्यस्याप्ययं नियमो यन्न्यायप्राप्तसच्छिष्यनिस्तारणमविद्यामहोदधेः।। १३।। जिस ज्ञान यानी पराविद्यासे उस अद्रेश्यादि विशेषणवाले, पूर्ण होने या शरीररूप पुरमें शयन करनेके कारण पुरुष' शब्दवाच्य अक्षरको, परमार्थस्वभावसे सत्य है, क्षरणरहित होनेसे क्षतरहित होनेसे क्षयरहित होनेसे इसे अक्षर कहते हैं उस अक्षरको जानता है, उस ब्रह्मविद्याको वस्तुतः यानी यथावत् उपदेश करे। यह इसका भावार्थ है। न्यायपूर्वक अपने पास आये हुए सत् शिष्यको अविद्या-महासमुद्रसे पार कराना यही आचार्यके लिए भी नियम है।। १३।।

इत्यथर्ववेदीयमुण्डकोपनिषद्भाष्ये प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः।। २।।

इति मुण्डकोपनिषद्भाष्ये प्रथममुण्डकं समाप्तम्।। १।।

अक्षरणादिति- अवयवान्यथाभावलक्षणपरिणामशून्यत्वात्। अक्षयत्वाच्चेति। अशरीरत्वाद्विकारशून्यत्वादित्यर्थः।। १३।। अक्षरण अर्थात् अवयवोंका अन्यथाभाव रूप परिणाम रहित होना। अर्थात् अक्षय होनेसे। क्योंकि अशरीर है इसलिए विकार शून्य है।। १३।।

इत्यथर्ववेदीयमुण्डकोपनिषद्भाष्यटीकायां प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः।। २।।

(द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः)

द्वे विद्ये वेदितव्ये इत्युपन्यस्यापरविद्यामाद्यमुण्डकेन प्रपञ्च्य परविद्यां सूत्रितां प्रपंचयितुं द्वितीयमुण्डकारम्भ इत्याह- अपरविद्याय इत्यादिना। जानने योग्य दो विद्याएँ है इस प्रकार प्रस्तुत अपरविद्याको प्रथममुण्डकके द्वारा विस्तार

करके सूत्ररूपमें कहे गये परविद्याका विस्तारके लिए द्वितीय मुंडकका आरंभ होता है, इसे भाष्यकार कहते हैं- **अपरविद्यायाः सर्वं कार्यमुक्तम्। स च संसारो यत्सारो यस्मान्मूलादक्षरात्संभवति यस्मिंश्च प्रलीयते तदक्षरं पुरुषाख्यं सत्यम्। यस्मिन्विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति तत्परस्य ब्रह्मविद्याया विषयः स वक्तव्य इत्युत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते-** प्रथममुण्डक में अपरविद्याका समस्त कार्य कहा गया। यही संसार है; उसका जो सारतत्त्व है, जिस मूल-कारण अक्षरसे वह उत्पन्न होता है और जिसमें उसका लय होता है, वह पुरुषनामवाला अक्षरब्रह्म सत्य है। जिसका ज्ञान होनेपर यह सब कुछ जान लिया जाता है, वह पर ब्रह्मविद्याका विषय है और उसे बतलाना है, इससे आगेका ग्रन्थ आरंभ होता है-

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद्विविधा सोम्य भावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति।। १।।

तत् एतत् सत्यम्- वह यह अक्षर सत्य है। **यथा सुदीप्तात् पावकात् सरूपाः विस्फुलिंगाः सहस्रसः प्रभवन्ते-** जिस प्रकार प्रज्व-लित अग्निसे उसीके समान रूपवाले हजारों चिनगारियाँ निकलते हैं, **तथा सोम्य अक्षरात् विविधाः भावाः प्रजायन्ते तत्र च अपियन्ति-** हे सोम्य! उसी प्रकार उस अक्षरसे अनेकों भाव अर्थात् जीव उत्पन्न होते हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं।। १।।

कर्मणोऽपि प्राक्सत्यत्वमुक्तं तद्वदिदं सत्यत्वं न मन्तव्यमित्याह- यदपर-विद्याविषयमिति। पहले कर्मोका सत्यता कही गयी है, उसी प्रकार यह सत्यता नहीं समझना चाहिए इस पर कहते हैं- **यदपरविद्याविषयं कर्मफलक्षणं सत्यं तदापेक्षिकम्। इदं तु परविद्याविषयं परमार्थसल्लक्षणत्वात्।** जो अपरविद्याको विषय करनेवाला कर्मफललक्षणवाला सत्य है वह

आपेक्षिक सत्य है। यह तो परविद्याका विषय परमार्थसत्-स्वरूप होनेसे निरपेक्ष सत्य है। **विषीयते विशेष्यते विद्याऽनेनेति व्युत्पत्त्या विषय-शब्दस्य वस्तुपरत्वान्नपुंसकलिंगत्वम्।** विद्या इससे विषीयते अर्थात् विशेषित होता है इस व्युत्पत्तिसे विषयशब्दका नंपुसक लिंग होना सिद्ध होता है। **परमार्थतः सल्लक्षणत्वादत्यन्ताबाध्यत्वादित्यर्थः।** पारमर्थिकरूपसे सत् लक्षण होनेसे अत्यन्त अबाध्य होनेसे परविद्याका विषय है। **तदेतत्सत्यं यथाभूतं विद्याविषयम्।** वह यह विद्याका विषय सत्य अर्थात् यथार्थ है। **अविद्याविषयत्वाच्चा-नृतमितरत्।** अविद्याको विषय करनेसे दूसरा मिथ्या है। **अत्यन्त-परोक्षत्वात्कथं नाम प्रत्यक्षवत्सत्यमक्षरं प्रतिपद्येरन्निति दृष्टान्तमाह-** अत्यन्त परोक्ष होनेके कारण उस सत्य अक्षर को प्रत्यक्षके समान कैसे जान सकते हैं? इसके लिए श्रुतिने दृष्टान्त दिया है- **अत्यन्त-परोक्षत्वादिति- शास्त्रैकगम्यत्वात्।** अत्यन्त परोक्ष होनेसे अर्थात् केवल शास्त्रसे जाना जानेसे। **अपूर्ववद्ब्रह्मणः प्रत्यक्षत्वं न सम्भवति साक्षात्काराधीनं च कैवल्यं ततः कथं नाम सत्यमक्षरं प्रत्यक्षवत्प्रतिपद्येरन्मुमुक्षव इत्यभिप्रेत्य जीवब्रह्मणोरकत्वे दृष्टान्तमाह- यथा सुदीप्तादिति।** किसी अपूर्वके समान ब्रह्मका प्रत्यक्ष होना संभव नहीं है। और मोक्ष ब्रह्मसाक्षात्कार के अधीन है। इससे कैसे मुमुक्षु सत्य अक्षर को प्रत्यक्षके समान जान सकते हैं? इस अभिप्रायसे जीव और ब्रह्मके एकत्वमें दृष्टान्त कहते हैं- **यथा सुदीप्तात्सुष्ठु दीप्तादिद्धात्पावकादग्नेर्वि-ष्फुलिङ्गा अग्न्यवयवाः सहस्रशोऽनेकशः प्रभवन्ते निर्गच्छन्ति सरूपा अग्निसलक्षणा एव तथोक्तलक्षणादक्षराद्विविधा नानादेहोपाधिभेदमनु-विधीयमानत्वाद्विविधा हे सोम्य भावा जीवा आकाशादिव घटादिपरि-च्छिन्नाः सुषिरभेदा घटाद्युपाधिप्रभेदमनुभवन्ति एवं नानानामरूपकृत-देहोपाधिप्रभवमनुप्रजायन्ते तत्र चैव तस्मिन्नेवाक्षरेऽपियन्ति देहोपाधि-विलयमनुलीयन्ते घटादिविलयमन्विव सुषिरभेदाः।** जैसे अच्छी तरह दीप्त सुदीप्त अर्थात् प्रज्वलित हुए अग्नि से हजार अर्थात् अनेक अग्निके लक्षणवाले अग्निके अवयव विष्फुलिंग निकलते हैं, उसी प्रकार हे सोम्य! कहे गये लक्षणवाले अक्षर ब्रह्मसे विविध अर्थात्

अनेक देहरूप उपाधियोंके भेदके अनुसार विहित होनेसे अनेक प्रकार भाव अर्थात् जीव, उस नाना नाम-रूपकृत देहोपाधिके जन्मके साथ उसी प्रकार उत्पन्न हो जाते हैं जैसे घटादि उपाधिभेदके अनुसार आकाशसे उन घटादिसे परिच्छिन्न बहुतसे छिद्र (घटाकाशादि)। तथा जिस प्रकार घटादिके नष्ट होनेपर वे घटाकाशादि छिद्र आकाशमें लीन हो जाते हैं उसी प्रकार देहरूप उपाधिके लीन होने पर वे सब जीव उस अक्षरमें ही लीन हो जाते हैं। **यथाकाशस्य सुषिरभेदोत्पत्तिप्रलयनिमित्तत्वं घटाद्युपाधिकृतमेव तद्वदक्षरस्यापि नामरूपकृतदेहोपाधिनिमित्तमेव जीवोत्पत्तिप्रलयनिमित्तत्वम्।। १।।** जैसे छिद्रभेदोंकी उत्पत्ति और प्रलयमें आकाशका निमित्त होना घटादि उपाधिसे हुआ है, वैसे जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयमें नामरूप देह-उपाधिके कारण ही अक्षरब्रह्मका निमित्त होना है।। १।। **एकत्वे सति प्रत्यग्रूपस्यापरोक्षत्वाद्ब्रह्मणोऽपि प्रत्यक्षत्वं भविष्यति घटेकदेशप्रत्यक्षत्वे घटप्रत्यक्षवदित्यर्थः। यथा विभक्तदेशावच्छिन्नत्वेन विस्फुलिंगेष्ववयवत्वादिव्यवहारः स्वतः पुनरग्न्यात्मत्वमेवोष्णप्रकाशत्वाविशेषात्तथा चिद्रूपत्वाविशेषाज्जीवानां स्वतो ब्रह्मत्वमेवेत्यर्थः।। १।।** जीवब्रह्म एकत्वज्ञान होने पर, अन्तरात्माका अपरोक्ष होनेसे ब्रह्मका भी प्रत्यक्ष होगा। जैसे घटके एकदेशके प्रत्यक्ष होने पर घटका प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार। जैसे अलग-देशसे अविच्छिन्न विस्फुलिंगोंमें अवयव आदि व्यवहार होता है फिर भी स्वभावसे अग्निस्वरूप ही है, क्योंकि उसमें उष्णता और प्रकाशता होती है, वैसे चैतन्यरूप सामान्यता से जीवोंका स्वरूपतः ब्रह्मपना है।। १।।

अक्षरस्यापि जीवोत्पत्तिप्रलयमिमित्तत्वमौपाधिकमुक्तमेकत्वसिद्ध्यर्थम्। तत्त्वतस्तु निमित्तनैमित्तिकभावोऽपि नास्तीत्याह- नामरूपबीजभूतादिति। एकत्व सिद्धिके लिए जीवोंकी उत्पत्ति-प्रलय निमित्तसे अक्षरका भी औपाधिक होना कहा गया है। यथार्थरूपसे निमित्त-नैमित्तिकभाव भी नहीं है, इसे कहते हैं- **नामरूपबीजभूतादव्याकृताख्यात्स्वविकारापेक्षया परादक्षरात्परं यत्सर्वोपाधिभेदवर्जितमक्षरस्यैव स्वरूपमाकाशस्येव सर्वमूर्तिवर्जितं नेति नेतीत्यादिविशेषणं विवक्षन्नाह-** नामरूपसंसारके बीज-कारणरूप अव्याकृत

जो कि अपने विकारोंकी अपेक्षासे पर है, उस पर अक्षरसे भी पर, जो समस्त उपाधियोंसे रहित है, जो अक्षरका भी स्वरूप है, जो आकाशके समान सभी आकारोंसे रहित है, जो 'नेति नेति' आदि विशेषणवाला परमात्मा है, उसे बतलानेकी इच्छासे श्रुति कहती है-

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः।। २।।

पुरुषः दिव्यः हि अमूर्तः सबाह्याभ्यन्तरः हि अजः अप्राणः हि अमनाः शुभ्रः परतः अक्षरात् परः- वह अक्षरब्रह्म पुरुष दिव्य यानी स्वयंज्योतिस्वरूप है, क्योंकि अमूर्त यानि आकार रहित है, बाहर-भीतर एकरस है, अजन्मा है, प्राणसे रहित है, मनसे रहित है, शुद्ध है, पर अक्षर अव्यक्तसे भी पर है।। २।।

दिव्यो द्योतनावान्स्वयंज्योतिष्ट्वात्। दिवि वा स्वात्मन भवोऽ-लौकिको वा। यह अक्षरब्रह्म प्रकाशवान् है क्योंकि स्वयंज्योति है। अथवा अपने दिव्य स्वरूपमें स्थित है या अलौकिक है। **हि यस्माद-मूर्तः सर्वमूर्तिवर्जितः पुरुषः पूर्णः पुरिशयो वा दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरः सह बाह्याभ्यन्तरेण वर्तत इति।** दिव्य है क्योंकि अमूर्त है अर्थात् समस्त आकारोंसे वर्जित है। पूर्ण होनेसे या शरीर रूप पुरोंमें शयन करनेके कारण पुरुष है। दिव्य अमूर्त पुरुष बाहर और भीतरके साथ रहता है, इससे सबाह्याभ्यन्तर है। **देहापेक्षया यद्वाह्यमान्तरं च प्रसिद्धं तेन सह तत्तादात्म्येन तदधिष्ठानतया वा वर्तत इति सबाह्याभ्यन्तरः।** देहकी अपेक्षासे जो बाहर और प्रसिद्ध है, उनके साथ तदात्म रूपसे या उनके अधिष्ठान रूपसे जो रहता है, वह सबाह्याभ्यन्तर है। **अजो न जायते कुतश्चित्स्वतोऽन्यस्य जन्मनिमित्तस्य चाभावात्यथा जलबुद्-बुदादेर्वाय्वादि यथा नभःसुषिरभेदानां घटादि।** वह अजन्मा है अर्थात् किसीसे उत्पन्न नहीं होता है। क्योंकि जैसे जलके बुलबुलोंका निमित्त वायु और घटाकाशका निमित्त घट होता है ऐसे उसके लिए

अपनेसे भिन्न कोई जन्मका निमित्त है ही नहीं। **अत एव सर्वात्मत्वा-त्तद्व्यतिरिक्तनिमित्ताभावादज इत्यर्थः।** सर्वात्म होनेसे और उससे अतिरिक्त किसी अन्य निमित्तके अभाव होनेसे वह अजन्मा है। **जायतेऽस्ति वर्धते विपरिणमते-ऽपक्षीयते विनश्यतीत्येवमादिभावविकाराणां निषेधे तात्पर्यमजशब्दस्याऽऽह- सर्व-भावविकारणामिति।** अज शब्दका तात्पर्य जन्मलेता है, है, बढता है, परिणामको प्राप्त होता है, क्षीण होता है, नष्ट होता है, इत्यादि भावविकारोंका निषेध है। इसे कहते हैं- **सर्वभावविकाराणां जनिमूलत्वात्तत्प्रतिषेधेन सर्वे प्रतिषिद्धा भवन्ति।** सारे भावविकारोंका मूल जन्म होनेसे जन्मके निषेधसे सभी का प्रतिषेध हो जाता है। **सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजोऽतोऽजरोऽमृताऽक्षरो ध्रवोऽभय इत्यर्थः।** क्योंकि वह सबाह्याभ्यन्तर अज है इसलिए वह अजर, अमर, अक्षर, ध्रुव और भयशून्य है यह इसका तात्पर्य है। **जीवानां प्राणादिमत्त्वात्तदात्मत्वे ब्रह्मणोऽपि प्राणादिमत्त्वं प्राप्तं तन्निवर्तयति-यद्यपीत्यादिना।** जीवोंका प्राणादिमान् होनेसे उनके स्वरूप होनेसे ब्रह्मका भी प्राणादिमान् होना प्राप्त होनेपर उसका खंडन करते हैं- **यद्यपि देहाद्युपाधि-भेददृष्टीनामविद्यावशाद्देहभेदेषु सप्राणः समनाः सेन्द्रियः सविषय इव प्रत्यवभासते तलमलादिमदिव आकाशं तथापि स्वतः परमार्थदृष्टिना-मप्राणोऽविद्यमानः क्रियाशक्तिभेदवांश्चलनात्मको वायुर्यस्मिन्नसावप्राणः।** यद्यपि देहादि उपाधियोंके कारण भेददृष्टिवालोंको अविद्याके कारण विभिन्न देहोंमें वह पुरुष प्राण, मन, इन्द्रिय एवं विषयसे युक्तसा भासता है, जैसे आकश तल-मलादिसे युक्त भासता है, तथापि परमार्थदृष्टिवालोंके लिए वह अप्राण है अर्थात् क्रियाशक्तिका भेदवाला चलनेवाला वायु जिसमें नहीं है वह अप्राण है। **तथा अमना अनेकज्ञानशक्तिभेदवत्सङ्कल्पाद्यत्मकं मनोऽप्यविद्यमानं यस्मि-न्सोयममनाः।** वैसे जिसमें ज्ञानशक्तिके अनेकों भेदवाला संकल्पादिरूप मन भी नहीं है वह अमना है। **स्मृतिसंशयाद्यनेकज्ञानेषु शक्तिविशेषोऽस्या-स्तीति तथोक्तम्।** स्मृति, संशय आदि अनेक ज्ञान अनुकूल विशेष शक्ति इस मनका है, वेसा मन। **तथा श्रुत्यन्तरे 'ध्यायतीव लेलायतीव' (बृ.४.३.७)**

इति। वैसे दूसरी श्रुतिमें कहा है कि 'मानो ध्यान करता हुआ-सा, चेष्टा करता हुअ-सा'।

यस्माच्चैवं प्रतिषिद्धोपाधिद्वयः तस्माच्छुभ्रः शुद्धः। क्योंकि इस प्रकार प्राण और मन दोनों उपाधियोंसे रहित है इसलिए वह शुभ्र अर्थात् शुद्ध है। **अतोऽक्षरान्नामरूपबीजोपाधिलक्षितस्वरूपात्** अतः नामरूपकी बीजभूत उपाधिसे जिसका स्वरूप लक्षित होता है उस अक्षरसे- **नामरूपयोर्बीजं ब्रह्म तस्योपाधितया लक्षितं शुद्धस्य कारणत्वानुपपत्त्या गमितं स्वरूपमस्येति तथोक्तम्।** नामरूपका बीज यानी कारण ब्रह्म उसके उपाधिरूपसे लक्षित है, उस शुद्ध ब्रह्मका कारणता बन नहीं सकती है। इससे बोधित स्वरूप समझना चाहिए। अर्थात् नामरूपबीज-उपाधिसे जानागया जो स्वरूप ऐसा अर्थ समझना चाहिए। **तस्मादुपाधिरूपात्तद्विशिष्टरूपाच्च परतोऽक्षरात्पर इति संबन्धः।** इसलिए उपाधिरूप विशिष्टरूप पर अक्षरसे पर ब्रह्म है इस प्रकार संबन्ध समझना चाहिए। **कथं मायातत्त्वस्याक्षरस्य परत्वमित्याकांक्षायामाह- सर्वकार्येति।** मायातत्त्व अक्षर पर कैसे हो सकता है? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं- **सर्वकार्यकरणबीजत्वेनोपलक्ष्यमाणत्वात्परं तदुपाधिलक्षणमव्याकृताख्य-मक्षरं सर्वविकारेभ्यः, तस्मात्परतोऽक्षरात्परो निरुपाधिकः पुरुषः इत्यर्थः।** संपूर्ण कार्य-करणोंके बीजरूपसे उपलक्षित होनेके कारण उन उपाधियोंवाला अव्याकृतसंज्ञक वह अक्षर अपने संपूर्ण विकारोंसे पर यानी श्रेष्ठ है, उस पर अक्षरसे भी वह निरुपाधिक पुरुष पर श्रेष्ठ है, यह तात्पर्य है। **कार्यं ह्यपरं प्रसिद्धम्। तत्कारणत्वेन गम्यमानत्वा-न्मायातत्त्वं परम्। यौक्तिकबाधादनिर्वाच्यत्वेऽपि स्वरूपोच्छेदाभावादक्षरम्। तदुक्तं गीतायाम् 'क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते। उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः पर-मात्मेत्युदाहृतः' इति।। २।।** लोकमें कार्य अपर और कारण पररूपमें प्रसिद्ध है। संसाररूप कार्यके कारणरूपसे जाना जाता है इससे मायातत्त्वं पर है। युक्तिसे बाध होने पर अनिर्वाच्य होने पर भी स्वरूपका उच्छेद न होनेसे अक्षर है। यह बात गीतामें कहा है- 'समस्त भूत क्षर है और कूटस्थ-माय अक्षर है। उत्तम पुरुष इन दोनोंसे भिन्न है। वह परमात्मा करके कहा जाता है'।। २।।

यस्मिस्तदाकाशाख्यमक्षरं संव्यवहारविषयमोतं प्रोतं च कथं पुनरप्राणादिमत्त्वं तस्येत्ययुच्यते। प्रश्न– किन्तु जिसमें संपूर्ण व्यवहार का विषयभूत वह आकशसंज्ञक अक्षरतत्त्व अव्याकृत ओतप्रोत है, उसका अप्राणवाला होना कैसे कहते हो? **यदि हि प्राणादयः प्रागु–त्पत्तेः पुरुष इव स्वेनात्मना सन्ति तदा पुरुषस्य प्राणादिना विद्यमानेन प्राणादिमत्त्वं भवेन्न तु ते प्राणादयः प्रागुत्पत्तेः पुरुषे इव स्वेनात्मन सन्ति तदा, अतोऽप्राणिादिमान्परः पुरुषः यथानुत्पन्ने पुत्रेऽपुत्रो देव–दत्तः।। २।।** यदि प्राणादि अपनी उत्पत्तिसे पूर्व भी पुरुषके समान स्वस्वरूपसे विद्यमान रहते होते तो उन विद्यमान प्राणादिके कारण पुरुषका प्राणादियुक्त होना माना जा सकता था। किन्तु उस समय वे अपनी उत्पत्तिसे पूर्व पुरुषके समान स्वरूपतः है नहीं; इसलिए पर पुरुष प्राणादियोंसे रहित है। जैसे पुत्र उत्पन्न होनेसे पूर्व देवदत्त अपुत्रिक कहा जाता है।। २।।

कथं ते न सन्ति प्राणादय इत्युच्यते– वे प्राणादि उस अक्षरमें क्यों नहीं है? सो बतलाते हैं–

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी।। ३।।

एतस्मात् प्राणः जायते मनः सर्वे इन्दियाणि खं वायुः ज्योतिः आपः विश्वस्य धारिणी पृथिवी च (जायन्ते)– इस अक्षर पुरुषसे ही प्राण उत्पन्न होता है तथा इससे ही मन, संपूर्ण इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल और सारे संसारको धारण करनेवाली पृथिवी उत्पन्न होती है।।। ३।।

यदेव चैतन्यं निरुपाधिके शुद्धमविकल्पं ब्रह्म यत्तत्त्वज्ञानाज्जीवानां कैवल्यं तदेव मायाप्रतिबिम्बितरूपेण कारणं भवतीत्याह– यस्मादेतस्मादेवेति। जो निरुपा–धिक शुद्ध विकल्परहित चैतन्य ब्रह्म है, जिसके तत्त्वके ज्ञानसे जीवोंको मोक्षकी प्राप्ति होती है; वह ब्रह्म मायामें प्रतिबिंबित रूपसे संसारका कारण होता है।

इसे कहते हैं- **यस्मादेतस्मादेव पुरुषन्नामरूपबीजोपाधिलक्षिताज्जायत उत्पद्यते-** क्योंकि नाम-रूपकी बीजभूत अविद्यारूप उपाधिसे लक्षित पुरुषसे (ईश्वरसे) प्राण उत्पन्न होता है। **प्राणोत्पत्तेरूर्ध्वं तर्हि सप्राणत्वं परमात्मनो भविष्यतीतिशंकानिवृत्यर्थं श्रुत्यन्तरप्रसिद्धं प्राणस्य विशेषणमाह- अविद्याविषय इति।** प्राणकी उत्पत्तिके बाद तब वह परमात्मा प्राणवाला होगा, ऐसी आशंकाकी निवृत्तिके लिए दूसरी श्रुतिमें प्रसिद्ध प्राणका विशेषण कहते हैं- **अविद्याविषयविकारभूतो नामधेयोऽनृतात्मकः प्राणः 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' 'अनृतम्' इति श्रुत्यन्तरात्।**) अविद्याका विषय विकाररूप केवल नाममात्र मिथ्यारूप प्राण उत्पन्न होता है। 'विकार वाणीका विलास और नाममात्र है' 'वह मिथ्या है' इस प्रकार अन्य श्रुतिमें कहा है। **नामधेय इति- वाङ्मात्रो न वस्तुवृत्त इत्यर्थः।** नामधेय अर्थात् कहने मात्र है वास्तविक नहीं है। **न हि तेनाविद्याविषयेणानृतेन प्राणेन सप्राणत्वं परस्य स्यादपुत्रस्य स्वप्नदृष्टेनेव पुत्रेण सपुत्रत्वम्।** उस अविद्याविषयक मिथ्या प्राणसे परब्रह्मका प्राणवाला होना सिद्ध नहीं होता है। जैसे कि स्वप्नमें देखे हुए पुत्रसे पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रवान् नहीं हो सकता है। **एवं मनः सर्वाणि चेन्द्रियाणि विषयाश्चै-तस्मादेव जायन्ते। तस्मात्सिद्धमस्य निरुपचरितम् अप्राणादिमत्त्वमि-त्यर्थः।** इस प्रकार मन, संपूर्ण इन्द्रियाँ और उनके विषय भी इसीसे उत्पन्न होते हैं। अतः उसका अप्राणादिवाला होना वास्तविकता यह अर्थ है। **प्राणादीनां पाठक्रमोऽयमर्थक्रमेण बाध्यते।** प्राण आदिका पाठक्रम अर्थक्रमसे बाधित हो जाता है। **'गताः कलाः पंचदश प्रतिष्ठाः' (प्र.३.२.७) इति भूतेषु लयश्रवणेन प्रणानां भौतिकत्वावगमाद्भूतोत्पत्त्यनन्तरं प्राणोत्पत्तिर्द्रष्यव्येति।** 'गताः कलाः पंचदश प्रतिष्ठा' इस मंत्रमें महाभूतोंमें लय श्रवणसे प्राण भौतिक होनेसे भूतोंकी उत्पत्तिके अनन्तर प्राणकी उत्पत्ति समझना चाहिए।

यथा च प्रागुत्पत्तेः परमार्थतोऽसन्तस्तथा प्रलीनाश्चेति द्रष्टव्याः। जिस प्रकार वे अपनी उत्पत्तिसे पूर्व वस्तुतः असत् ही थे उसी प्रकार लीन होनेपर भी असत् ही रहते हैं, ऐसा समझना

चाहिए। **यथा करणानि मनश्चेन्द्रियाणि तथा शरीरविषयकारणानि भूतानि,खमाकाशं वायुर्बाह्य आवहादिभेदः, ज्योतिरग्निः, आप उदकम्, पृथिवी धरित्री विश्वस्य सर्वस्य धारिणी, एतानि च शब्दस्पर्शरूपरस-गन्धोत्तरोत्तरगुणानि पूर्वपूर्वगुणसहितान्येतस्मादेव जायन्ते।। ३।।** जिस प्रकार मन इन्द्रियाँ आदि करण उसी प्रकार शरीर और विषयोंके कारण महाभूत- खं यानी आकाश, आवहादि भेदवाला बाहरका वायु, ज्योति यानी अग्नि, आप यानी जल, पृथिवी यानी संपूर्ण विश्वको धारण करनेवाली धरित्री; ये पंचमहाभूत जो पूर्व-पूर्व गुणके साथ उत्तरोत्तर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन गुणोंसे युक्त हैं, उत्पन्न होते हैं।। ३।। **अभिमुखमाच्छन्वायुरावहः पुरतो गच्छन्प्रवह इत्यादिभेदः।** सामनेकी ओर आनेवाली वायु आवह और पीछेकी ओर जानेवाली वायु प्रवह, इत्यादि भेद है। (प्रवहः, आवहः उद्वहः, संवहः, विवहः, परिवहः, परावहः ये वायुके सात भेद है। ये पृथिवीलोक, सूर्यमंडल, चन्द्रलोक, नक्षत्रमंडल, ग्रहमंडल, सप्तर्षिमंडल और ध्रुव में स्थित वायुके नामभेद है। इसप्रकार अन्यत्र कहा है।) **शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा उत्तरोत्तरस्य गुणा येषां तानि तथोक्तानि। यथा शुक्लतन्त्ववस्थापन्नादन्वयिकारणा-ज्जायमानः पटः शुक्लगुणो जायते तथाऽऽकाशवस्थापन्नाद् ब्रह्मणो जायमानो वायुराकाशगुणेन शब्देनान्वितो जायते। तथैव वायुभावापन्नाद्ब्रह्मणोऽग्निस्तद्गुणे-नान्वितो जायत इति द्रष्टव्यम्।** उत्तर उत्तर गुण है जिनका वे शब्दादि। जैसे सफेद धागोंसे दूसरी अवस्थाको प्राप्त, अन्वयीकारणसे उत्पन्न पट सफेद गुणवाला उत्पन्न होता है, वैसे आकाश अवस्थापन्न ब्रह्मसे उत्पन्न वायु आकाश के गुण शब्दसे युक्त उत्पन्न होता है। वैसे वायु भावापन्न ब्रह्मसे अग्नि उस वायुके गुणोंसे युक्त उत्पन्न होता है। इस प्रकार समझना चाहिए। **ननु सूक्ष्माणि भूतानि प्रथममुत्पद्यन्ते। अनन्तरं तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोदिति पंचीकरणो-पलक्षणार्थं त्रिवृत्करणश्रुतेः पंचात्मकत्वमवगम्यते। तत एकैकस्य भूतस्य पंचगुण-वत्त्वं वर्णितमन्यत्र कथमिह पंचीकरणमनादृत्य प्रथमसर्ग एवाऽऽकाशस्यैकगुणत्वं वायोर्हि द्विगुणत्वं तेजसस्त्रिगुणत्वमित्याद्युच्यते।** शंका- सूक्ष्मभूत पहले उत्पन्न होते हैं। बादमें एक एक को त्रिवृत त्रिवृत किया इस प्रकार पंचीकरण के उपलक्षणके लिए त्रिवृत्करण श्रुतिसे उनका पंचात्मक जाना जाता है। इससे अन्यत्र एक एक महाभूतका पांचगुणवाला होना वर्णन किया गया है; तो

पंचीकरण का अनादर करके प्रथम सर्गमें ही आकाशका एक गुण वायुका दो गुण तेजका तीन गुण इत्यादि कहा जाता है? **सत्यम्। भूतसर्गे तात्पर्याभावद्यो-तनाय प्रक्रियान्तरं न विरुध्यते। न ह्येतत्प्रतिबद्धं किंचित्फलं श्रूयते। अत एव गुणगुणिभावोऽपि न वैशेषिकपक्षवदिह विवक्षितः। किन्तु राहोः शिर इतिवद्व्यप-देशमात्रम्। विस्तरेण त्वन्त्यकार्यपर्यन्तं तेन तेनाऽऽकारेण ब्रह्मैव विवर्तत इति प्रपंच्यते ततोऽतिरिक्तस्याणुमात्रस्यासम्भवात्तस्मिन्विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति प्रदर्शनार्थमित्यर्थः।।** सत्य है अर्थात् अर्धस्वीकृति आपकी शंकामें बल है। किन्तु भूतोंकी उत्पत्तिमें तात्पर्यके अभावको दिखानेके लिए दूसरी प्रक्रियाका विरोध नहीं है। इससे प्रतिबद्ध अर्थात् इस उत्पत्ति प्रक्रियासे प्रयुक्त कोई फलका श्रवण नहीं है। अतः गुणगुणिभाव भी वैशेषिकोंके समान यहाँ विवक्षित नहीं है। किन्तु राहुका शिर जैसे कथनमात्र है। विस्तार पूर्वक अन्तिम कार्य पर्यन्त उन उन आकार से ब्रह्म ही विवर्तित होता है, इसप्रकार प्रदर्शन किया जाता है। उस ब्रह्मसे अतिरिक्त अणुमात्रका भी असंभव होनेसे उस ब्रह्मके ज्ञानसे यह सब कुछ जाना जाता है इसी बातको दिखानेके लिए उत्पत्तिक्रमका कथन किया गया है।। ३।।

संक्षेपतः परविद्याविषयमक्षरं निर्विशेषं पुरुषं सत्यं दिव्यो ह्यमूर्त इत्यादिना मन्त्रेणोक्त्व पुनस्तदेव सविशेषं विस्तरेण वक्तव्यमिति प्रव-वृते; संक्षेपविस्तररोक्तो हि पदार्थः सुखधिगम्यो भवति सूत्रभाष्योक्ति-वदिति। सूत्र भाष्यके समान पहले संक्षेपमें और फिर विस्तारपूर्वक कहा हुआ पदार्थ सुगमतासे समझमें आ जाता है, इससे परविद्याके विषयभूत निर्विशेष सत्य पुरुषका 'दिव्यो ह्यमूर्तः' इत्यादि मंत्रसे संक्षेपसे वर्णन करके अब उसी तत्त्वका विशेषसहित विस्तारपूर्वक वर्णन करना है, इसीके लिए यह आगेकी श्रुति प्रवृत्त होती है। **योऽपि प्रथमजात्प्राणाद्धिरण्यगर्भाज्जायतेऽण्डस्यान्तर्विराट् स तत्त्वान्त-रितत्वेन लक्ष्यमाणोऽप्येतस्मादेव पुरुषाज्जायत एतन्मयश्चेत्येतदर्थमाह। तं च विशिनष्टि-** जो प्रथम उत्पन्न होनेवाले प्राण अर्थात् हिरण्यगर्भ से ब्रह्माण्डके अन्दर विराट् पुरुष उत्पन्न होता है, वह यद्यपि दूसरे

तत्त्वके रूपमें लक्षित होता है, वास्तवमें इसी पुरुष ब्रह्मसे ही उत्पन्न होता है और ब्रह्ममय है, इस अर्थको श्रुति कहती है–

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा।। ४।।

अस्य अग्निः मूर्धा, चन्द्रसूर्यौ चक्षुषी, दिशः श्रोत्रे, च विवृताः वेदाः वाक्, वायुः प्राणः, विश्वं हृदयम्– इस विराट पुरुषका अग्नि (द्युलोक) मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं, दिशाएँ कण्र हैं, प्रसिद्ध वेद वाणी हैं, वायु प्राण है, सारा विश्व हृदय है। **पद्भ्यां पृथिवी–** और जिसके चरणोंसे पृथिवी प्रकट हुई, **एषः सर्वभूतान्त–रात्मा–** वह देव संपूर्ण भूतोंका अन्तरात्मा है।। ४।।

अग्निर्द्युलोकः 'असौ वाव लोको गौतमाग्निः' (छा.५.४.१) इति श्रुतेः, मूर्धा यस्योत्तमाङ्गं शिरः। हे गौतम यह द्युलोक अग्नि है इस छान्दोग्य श्रुति से अग्नि अर्थात् द्युलोक इस विराट पुरुष का उत्तमांग मस्तक है। **चक्षुषी चन्द्रश्च सूर्यश्चेति चन्दसूर्यौ यस्येति सर्वत्रानुषङ्गः कर्तव्यः अस्येत्यस्य पदस्य वक्ष्यमाणस्य यस्येति विपरिणामं कृत्वा।** अस्य इस पदको आगेके मंत्रमें कहे गये यस्य में परिणत कर चन्द्रमा और सूर्य जिसके नेत्र हैं। इस प्रकार आगे भी अस्यको यस्यमें परिणत करना चाहिए। **दिशः श्रोत्रे यस्य। वाग्विवृता उद्घाटिताः प्रसिद्धा वेदा यस्य, वायुः प्राणो यस्य, हृदयमन्तःरणं विश्वं समस्तं जगदस्य यस्येत्येतत्।** दिशाएँ जिसके कर्ण हैं, विवृत अर्थात् उद्घाटित यानी प्रसिद्ध वेद जिसकी वाणी हैं, वायु जिसका प्राण है, विश्व यानी समस्त जगत् जिसका हृदय अर्थात् अन्तःकरण है। **सर्वं ह्यन्तःकरणविकारमेव जगन्मनस्येव सुषुप्ते प्रलयदर्शनात्।**

जागरितेऽपि तत एवाग्निविषुलिङ्गवद्विप्रतिष्ठानात्। संपूर्ण जगत् अन्तःकरणका ही विकार है, क्योंकि सुषुप्तिमें मनमें ही उसका प्रलय देखा गया है। और जाग्रत् अवस्थामें अग्निसे चिनगारियोंके समान उसे उसीसे निकलकर स्थित होता देखा गया है। **यस्य च पद्भ्यां जाता पृथिवी एष देवो विष्णुरनन्तः प्रथमशरीरी त्रैलोक्यदेहोपाधिः सर्वेषां भूतानामन्तरात्मा।। ४।।** तथा जिसके चरणोंसे पृथिवी उत्पन्न हुई है यह त्रेलोक्यदेह-उपाधिक प्रथम शरीरी अनन्त देव विष्णु ही समस्त भूतोंका अन्तरात्मा है।। ४।। **सर्वेषां भूतानामिति- पंचमहाभूता-नामन्तरात्मा स्थूलपंचभूतशरीरो हि विराडित्यर्थः।। ४।।** सभी भूतोंका अन्तरात्मा अर्थात् पंचमहाभूतोंका अन्तरात्मा यानी स्थूल पंचभूत शरीरवाला विराट् है।। ४।।

स हि सर्वभूतेषु द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता सर्वकारणात्मा पञ्चाग्निद्वारेण च याः संसरन्ति प्रजास्ता अपि तस्मादेव पुरुषात्प्र-जायन्त इत्युच्यते- सबका कारणस्वरूप वह परमात्मा ही समस्त प्राणियोंमें द्रष्टा, श्रोता, मन्ता और विज्ञाता है तथा पंचाग्निके द्वारा जो प्रजाएँ जन्म-मृत्युरूप संसारको प्राप्त होती हैं वे भी उस पुरुषसे ही उत्पन्न होती हैं, यह बात अगतेल मन्त्रसे बतलायी जाती है- **पंचाग्निद्वारेणेति- द्युपर्जन्यपृथिवीपुरुषयोषित्सु पंचस्वग्निदृष्टेः श्रुत्यन्तरचोदितत्वा-त्तद्द्वारेणेत्यर्थः। ५।।** पंचाग्निद्वारा अर्थात् द्युलोक, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष और योषित् आदि पांचोंमें अग्निदृष्टिके द्वारा। क्योंकि इसका अन्यश्रुतिमें विधान किया गया है। उन पंचाग्निके द्वारा।

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः
सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्।
पुमान्रेतः सिञ्चति योषितायां
वह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः।। ५।।

तस्मात् अग्निः यस्य सूर्यः समिधः– उस पुरुषसे अग्नि उत्पन्न हुआ जिसका समिधा सूर्य है। **सोमात् पर्जन्यः पृथिव्यां ओषधयः–** (उस द्युलोकनाम अग्निसे निष्पन्न हुए) सोम अर्थात् चन्द्रमासे मेघ और मेघसे पृथिवीमें ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। **पुमान् योषितायां रेतः सिंचति–** पुरुष स्त्रीमें ओषधियोंसे उत्पन्न हुआ वीर्यका सींचन करता है। **पुरुषात् वह्वीः प्रजाः संप्रसूताः–** इस प्रकार पुरुषसे ही यह बहुत-सी प्रजा उत्पन्न हुई है।। ५।।

तस्मात्परस्मात्पुरुषात्प्रजावस्थानविशेषरूपोऽग्निः। उस परम पुरुषसे प्रजाका अवस्थानविशेषरूप अग्नि उत्पन्न हुआ। (टिप्पणी- देवप्रजा के अवस्थान स्वर्गरूप अग्नि उत्पन्न हुआ)। **स विशिष्यते, समिधो यस्य सूर्यः समिध इव समिधः। सूर्येण हि द्युलोकः समिध्यते।** उस अग्निकी विशेषता बतलाते हैं कि सूर्य जिसका ईधन है। क्योंकि सूर्य से ही द्युलोक प्रदीप्त होता है। **ततो हि द्युलोकान्निष्पन्नात्सोमा-त्पर्जन्यो द्वितीयोऽग्निः सम्भवति।** उस द्युलोकरूप अग्निसे निष्पन्न हुए सोम (चन्द्रमा)से दूसरा अग्नि मेघ उत्पन्न होता है। (जीव स्वर्गलोकके भोग भोग कर वहाँसे चन्द्रलोकमें आता है। चन्द्रलोकसे वह अनुशयी जीव बादलमें आता है, वृष्टिके द्वारा चावल और गेहूँ आदि औषधीमें आता है। वहाँसे पुरुषके वीर्यमें आता है और फिर रेतसींचनसे स्त्रीके गर्भमें आता है। इस कारण सोमसे मेघकी उत्पत्ति अर्थात् जीवकी गति कही गयी है। नहीं तो चन्द्रमासे मेघकी उत्पत्ति बनती नहीं।) **तस्माच्च पर्जन्यात् ओषधयः पृथिव्यां सम्भवन्ति। ओषधिभ्यः पुरुषाग्नौ हुताभ्य उपादानभूताभ्यः पुमानग्नी रेतः सिञ्चति योषितायां योषिति योषाग्नौ स्त्रियामिति।** फिर उस मेघसे पृथिवीमें ओषधियाँ उत्पन्न होती है। पुरुषरूप अग्निमें हवन किये गये (पुरुष अन्न खाने पर) उपादान रूप उन ओषधियोंसे उत्पन्न वीर्यको पुरुषाग्नि स्त्रीरूप अग्नि अर्थात् स्त्रीमें सींचन करता है। **एवं क्रमेण वह्वीर्वह्व्यः प्रजा ब्राह्मणाद्याः पुरुषात्परस्मात्सम्प्रसूताः समुत्पन्नाः।। ५।।** इस क्रमसे यह ब्राह्मणादि रूप प्रजा परम पुरुषसे ही उत्पन्न हुई है।। ५।।

किं च कर्मसाधनानि फलानि च तस्मादेवेत्याह– और भी कर्म के साधन और फल भी उसीसे उत्पन्न हुए हैं। इसी बातको श्रुति कहती है–

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा
यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।
संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः
सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः।। ६ ।।

तस्मात् ऋचः सामः यजूंषि दीक्षा यज्ञाः च सर्वे क्रतवः दक्षिणाः च संवत्सरः च यजमानः च लोकाः यत्र सोमः पवते यत्र सूर्यः– उस परम पुरुषसे ऋचाएँ, साममंत्र, यजुःमंत्र, दीक्षा, समस्त यज्ञ, क्रतु (विशिष्ट यज्ञ), दक्षिणा, संवत्सर, यजमान और कर्मफल-भूत लोक, जो चन्द्रमाके द्वारा पवित्र और जिसमें सूर्य तपता है, वे सभी उत्पन्न होते हैं।। ६ ।।

तस्मात्पुरुषादृचो नियताक्षरपादावसाना गायत्र्यादिच्छन्दोविशिष्टा मन्त्राः। साम पाञ्चभक्तिकं च साप्तभक्तिकं च स्तोभादिगीतविशिष्टम्। यजूंषि अनियताक्षरपादावसानानि वाक्यरूपाण्येवं त्रिविधा मन्त्राः। उस पुरुषसे ऋचाएँ अर्थात् नियत अक्षरोंसे समाप्त पादवाले गायत्री आदि छन्दोंसे विशिष्ट मंत्र; पांचभक्तिक सातभक्तिक स्तोभ आदि गीत विशिष्ट मंत्र; अनियत अक्षर पाद अवसानवाले वाक्यरूप यजूमंत्र; इस प्रकार तीन प्रकारके मंत्र (उत्पन्न हुए हैं)। **पांचभक्तिकमिति–हिंकारप्रस्तावोद्गीथप्रतिहारनिधनाख्याः पंच भक्तयोऽवयवा यस्य तत्तथोक्तम्।** पांचभक्तिक अर्थात् हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन नामवाले भक्ति यानी अवयव जिसके वह पांचभक्तिक साम। **साप्तभक्तिकमितिहिंकार-प्रस्तावाद्युद्गीथप्रतिहारोपद्रवनिधनाख्या सप्त भक्तयो यस्य तत्तथोक्तम्।** सात भक्तिक साम अर्थात् हिंकार, प्रस्ताव, आदि, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन नामवाले सात अवयव जिसका वह साप्तभक्तिक साम है। **स्तोभोऽर्थशून्यो**

वर्णः। स्तोभ अर्थात् अर्थरहित वर्णको स्तोभ कहते। **दीक्षा मौञ्ज्जादिलक्षणा कर्तृनियमविशेषाः। यज्ञाश्च सर्वेऽग्निहोत्रादयः। क्रतवः सयूपाः।** दीक्षा अर्थात् मौंज बन्धन आदि यज्ञकर्तोके नियमविशेष। यज्ञ अर्थात् अग्निहोत्र आदि संपूर्ण यज्ञ। क्रतु अर्थात् यूपसहित यज्ञ। (खूँटा जिसमें यज्ञीय पशु बाँधा जाता है उसे यूप कहते हैं।) **दक्षिणाश्चैकगवाद्यपरिमितसर्वस्वा–न्ताः।** एक गौसे लेकर अपरिमित सर्वस्वदान पर्यन्त दक्षिणा। **विश्व–जित्सर्वमेधयोः सर्वस्वदक्षिणा अत एकां गामारभ्य सर्वस्वान्ता दक्षिणा भवन्तीत्यर्थः।। ६।।** विश्वजित् और सर्वमेध यज्ञोंमें सर्वस्व दक्षिणा होती है इसलिए कहा है कि एक गायसे लेकर सर्वस्व दान पर्यन्त दक्षिणा होती है। **संवत्सरश्च कालः कर्माङ्गः। यजमानश्च कर्ता।** संवत्सर यानी कर्मका अंग काल। यजमान यानी यज्ञका कर्ता। **लोकास्तस्य कर्मफलभूतास्ते विशेष्यन्ते सोमो यत्र येषु लोकेषु पवते पुनाति लोकान्यत्र येषु सूर्य–स्तपति च ते च दक्षिणायनोत्तरयणमार्गद्वयगम्या विद्वदविद्वत्कर्तृफल–भूताः।। ६।।** लोक यानी उस कर्ताके कर्मफलरूप लोक। उन लोकों की विशेषता बतलाते हैं कि जिन लोकोंमें चन्द्रमा लोकोंको पवित्र करता है और जिनमें सूर्य तपता रहता है वे विद्वान् और अज्ञानी कर्ताके कर्मफलरूप दक्षिणायन और उत्तरायण इन दो मार्गसे प्राप्त होनेवाले लोक। ये सब उस अक्षर पुरुषसे उत्पन्न होते हैं।। ६।।

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः
साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि।
प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च
श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च।। ७।।

तस्मात् च बहुधा देवाः साध्याः मनुष्याः पशवः वयांसि प्राणापानौ व्रीहियवौ तपः च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिः च– उस पुरुषसे ही कर्मके अंगभूत बहुत–से देवता, साध्य, मनुष्य, पशु,

पक्षी, प्राण और अपान, धान और जौ, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य, और विधि ये सब उत्पन्न हुए हैं।। ७।।

तस्माच्च पुरुषात्कर्माङ्गभूता देवा वहुधा वस्वादिगणभेदेन सम्प्रसूताः सम्यक्प्रसूताः। साध्या देवविशेषाः। मनुष्याः कर्माधिकृताः। पशवो ग्राम्यारण्याः। वयांसि पक्षिणः। जीवनं च मनुष्यादीनां प्राणापानौ व्रीहियवौ हविरर्थौ। तपश्च कर्माङ्गं पुरुषसंस्कारलक्षणं स्वतन्त्रं च फलसाधनम्। श्रद्धा यत्पूर्वकः सर्वपुरुषार्थसाधनप्रयोगश्चितप्रसाद आस्तिक्यबुद्धिस्तथा सत्यमनृतवर्जनं यथाभूतार्थवचनं चापीडाकरम्। ब्रह्मचर्यं मैथुनासमाचारः। विधिश्चेतिकर्तव्यता।। ७।। उस पुरुषसे वसु आदि गणोंके भेदसे कर्मके अंगभूत बहुत-से देवता भलिभाँति उत्पन्न हुए। तथा देवताओंकी विशेष जाति साध्य। कर्मके अधिकारी मनुष्य। ग्राम्य और अरण्यके पशु। वयांसि यानी पक्षी समूह। मनुष्य आदिके जीवन प्राण और अपान, हविके लिए धान और जौ। और पुरुषका संस्कार करनेवाला कर्मका अंगभूत तथा स्वतन्त्रतासे फलका साधन, तप। जिसके कारण समस्त पुरुषार्थसाधनोंका प्रयोग होता है, तथा चित्तकी प्रसन्नता होती है उस आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धा। मिथ्या रहित किसीको पीडा न देनेवाला यथार्थ वचनरूप सत्य। मैथुन का आचरण न करनारूप ब्रह्मचर्य। और इतिकर्तव्यता रूप विधि। ये सब उस पुरुषसे ही उत्पन्न हुए हैं। **तपश्च कर्मांगमिति- पयोव्रतं ब्राह्मणस्य यवागू राज्न्यस्याऽऽमिक्षा वैश्यस्येत्यादिविहितं स्वतन्त्रं कृच्छ्रचान्दायणादीत्यर्थः।। ७।।** कर्मके अंग तप अर्थात् ब्राह्मणके लिए पयोव्रत, क्षत्रियके लिए यवागू यानी चावलका मांड या कांजी या जौ आदिकी कांजी, तथा वैश्यके लिए आमिक्षा यानी छेना खाकर रहना यह तप है। अथवा स्वतन्त्र रूपसे कुच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रत।। ७।।

किं च - और भी

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्

सप्तर्चिषः समिधः सप्त होमाः।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा
गुहाशया निहिताः सप्त सप्त।। ८।।

तस्मात् सप्त प्राणाः सप्तर्चिषः समिधः सप्त होमाः इमे सप्त लोकाः येषु प्राणाः चरन्ति प्रभवन्ति– उस पुरुषसे सात प्राण यानी मस्तकस्थ सात इन्द्रियाँ, उनकी सात दीप्तियाँ, सात समिधा (विषय), सात होम (विषयज्ञान) और जिनमें ये संचार करते हैं वे सात लोक यानी स्थान (गोलक) उत्पन्न हुए। **गुहाशयाः सप्त सप्त निहिताः–** शरीर या हृदयरूप गुहामें शयनकरनेवाले ये प्राणिभेदसे सात सात स्थापित हैं।। ८।।

सप्त शीर्षण्या प्राणास्तस्मादेव पुरुषात्प्रभवन्ति। तेषां च सप्त–र्चिषो दीप्तयः स्वविषयावद्योतनानि। (दो नेत्र, दो श्रवण, दो घ्राण और एक रसना) ये सात मस्तकस्थ प्राण उसी पुरुषसे उत्पन्न हुए। तथा अपने अपने विषयोंको प्रकाशित करनेवाल उनकी सात दीप्तियाँ (वृत्तिप्रयुक्त फलचैतन्यरूप प्रकाश)। **तथा सप्त समिधः सप्त विषयाः विषयैर्हि समिध्यन्ते प्राणाः।** तथा सात समिधा यानी उन सात शीर्षस्थ प्राणोंके सात विषय। क्योंकि विषयोंसे प्राण (इन्द्रियाँ) प्रदीप्त होते हैं। **सप्त होमास्तद्विषयविज्ञानानि 'यदस्य विज्ञानं तज्जुहोति' (महानारा. २५.१) इति श्रुत्यन्तरात्।** सात होम यानी अपने विषयोंके विज्ञान (वृत्ति)। क्योंकि दूसरी श्रुतिमें कहा है कि इसका जो विज्ञान है उसीको हवन करता है। ये सब इस पुरुषसे ही प्रकट हुए हैं। **किं च सप्तेमे लोका इन्दियस्थानानि येषु चरन्ति संचरन्ति प्राणाः। प्राणाः येषु चरन्तीति प्राणानां विशेषणमिदं प्राणापानादिनिवृ–त्त्यर्थम्।** और भी ये सात लोक यानी इन्दियस्थान (गोलक) जिनमें प्राण (इन्द्रियाँ) रहकर कार्य करती हैं। जिनमें प्राण विचरते हैं,

प्राणका ऐसा विशेषण देकर प्राण–अपान आदि वायुकी आशंकाकी निवृत्ति के लिए है। अर्थात् यहाँ प्राणशब्दसे इन्द्रियाँ ही समझना। **गुहायां शरीरे हृदये वा स्वापकाले शेरत इति गुहाशयाः निहिताः स्थापिता धात्रा सप्त सप्त प्रतिप्राणिभेदम्।** गुहा यानी शरीर या हृदय में शयन करते हैं वे गुहाशय प्राणिभेदसे सात सात परमात्मा के द्वारा स्थापित हुए पदार्थ उस पुरुषसे उत्पन्न हुए हैं। **यानि चात्म–याजिनां विदुषां कर्माणि कर्मफलानि चाविदुषां च कर्माणि तत्साधनानि कर्मफलानि च सर्वं चैतत्परस्मादेव पुरुषात्सर्वज्ञात्प्रसूतमिति प्रकरणार्थः ।। ८।।** इस प्रकार जो भी आत्मयाजी (अभेदज्ञानसे आत्माको जो परमात्मामें हवन करते हैं) विद्वानोंके कर्म और कर्मफल तथा अज्ञानियोंके कर्म, उनके साधन और फल; ये सब उस परम पुरुषसे ही उत्पन्न हुए हैं– यह इस प्रकरणका अर्थ है।। ८।। **आत्मयाजिना–मिति– सकलमिदमहं च परमात्मैवेतिभावनापूर्वकं परमेश्वराधनबुद्ध्या ये यजन्ति तेषामित्यर्थः।** आत्मयाजी अर्थात् यह सब कुछ और मैं भी परमात्मा ही हूँ, इस भावना पूर्वक परमेश्वरकी आराधना बुद्धिसे ये यजन करते हैं उन आत्मयाजि–योंका।। ८।।

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे–
ऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च
येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा।। ९।।

अतः सर्वे समुद्राः गिरयः च– इस पुरुषसे ही क्षार आदि सात समुद्र और हिमालय आदि सभी पर्वत उत्पन्न हुए हैं। **अस्मात् सर्वरूपाः सिन्धवः स्यन्दन्ते–** इसीसे उत्पन्न होकर गंगा आदि अनेक रूपोंवाली नदियाँ बहती हैं। **अतः च सर्वाः ओषधयः रसश्च–** इसीसे व्रीहि यवादि संपूर्ण ओषधियाँ और षड्विध रस उत्पन्न हुए हैं। **येन**

एषः हि अन्तरात्मा भूतैः तिष्ठते– जिस रससे भूतोंसे परिवेष्टित हुआ यह अन्तरात्मा रहता है।। ६।।

अतः पुरुषात्समुद्राः सर्वे क्षाराद्याः गिरयश्च हिमवदादयोऽस्मा- देव पुरुषात्सर्वे। इस पुरुषसे ही क्षारादि सात समुद्र और इसीसे हिमालय आदि समस्त पर्वत उत्पन्न हुए हैं। (क्षारोदक, क्षीरोदक, इक्षुरसोदक, सुरोदक, घृतोदक, दध्योदक और शुद्धोदक; ये सात समुद्र हैं) **स्यन्दन्ते स्रवन्ति गङ्गाद्याः सिन्धवो नद्यः सर्वरूपा बहुरूपा अस्मादेव पुरुषात्सर्वा ओषधयो व्रीहियवाद्याः।** गंगा आदि अनेक रूपोंवाली नदियाँ भी इसीसे उत्पन्न होकर प्रवाहित होती है। और इसी पुरुषसे व्रीहि,यव आदि सारे ओषधियाँ उत्पन्न होती है। **रसश्च मधुरादि षड्विधो येन रसेन पंचभिः स्थूलैः परिवेष्टितस्तिष्ठते तिष्ठति ह्यन्तरात्मा लिङ्गं सूक्ष्मं शरीरम्। तद्ध्यन्तराले शरीरस्याऽऽत्मनश्चाऽऽत्मवद्वर्तत इत्य- न्तरात्मा।। ६।।** इसीसे ही मधुरादि षड्विध रस उत्पन्न हुआ है, जिस रससे कि पाँच स्थूल भूतोंद्वारा परिवेष्टित हुआ अन्तरात्मा अर्थात् सूक्ष्मशरीर स्थित रहता है। शरीर और आत्माके मध्यमें आत्माके समान रहता है, इससे अन्तरात्मा कहलाता है।। ६।।

एवं पुरुषात्सर्वमिदं सम्प्रसूतम्। इस प्रकार यह सब पुरुषसे ही उत्पन्न हुआ है। **अतो वाचारम्भणं विकारो नामधेयमनृतं पुरुष इत्येव सत्यम्। अतः–** अतः विकार, वाणीका आरंभ और नाममात्रके होनेसे मिथ्या ही है। केवल पुरुष ही सत्य है। इसलिए–

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य।। १०।।

इति द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः।। १।।

पुरुषः एव इदं विश्वं कर्म तपः ब्रह्म परामृतम्– यह सारा जगत् कर्म और तप पुरुष ही है। यह सब पर अमृतस्वरूप ब्रह्म है। **सोम्य इह यः गुहायां निहितं एतत् वेद सः अविद्याग्रन्थिं**

विकिरति– हे सोम्य जीते जी जो हृदयरूप गुहामें स्थित इस पुरुषको जानता है, वह अविद्याकी ग्रन्थिका छेदन कर देता है।। १०।।

पुरुष एवेदं विश्वं सर्वम्। न विश्वं नाम पुरुषादन्यत्किञ्चि- दस्ति। पुरुष ही यह सारा जगत् है। पुरुषसे भिन्न जगत् कोई वस्तु नहीं है। **अतो यदुक्तं तदेवेदमभिहितं 'कस्मिन्नु भववो विज्ञाते सर्व- मिदं विज्ञातं भवतीति' एतस्मिन्हि परस्मिन्नात्मनि सर्वकारणे पुरुषे विज्ञाते पुरुष एवेदं विश्वं नान्यदस्तीति विज्ञातं भवतीति।** अतः 'किसके ज्ञानसे यह सब कुछ जान लिया जाता है' ऐसा जो प्रश्न किया गया था उसीका यहाँ उत्तर दिया गया है कि सबके कारणरूप इस परमात्माको जान लेनेपर ही, यह जगत् पुरुष ही है उससे भिन्न नहीं है इस प्रकार सब कुछ जाना जाता है। (मिट्टीको जान लेनेसे मिट्टीसे बने घड़ा, दीप आदि सब पदार्थ मिट्टी ही है; इस प्रकार जाना जाता है)

किं पुनरिदं विश्वमित्युच्यते। कर्माग्निहोत्रादिलक्षणम्। तपो ज्ञानं तत्कृतं फलमन्येदेतावद्धीदं सर्वम्। तच्चैतद्ब्रह्मणः कार्यम्। यह विश्व क्या है उसे संक्षेपसे कहते हैं– अग्निहोत्रादि लक्षणवाला कर्म, तप यानी ज्ञान और उनसे होनेवाला फल। और जो कुछ है वे इतने ही है। अर्थात् इन तीनोंमें सबका अन्तर्भाव हो जाता है। यह सब ब्रह्मका कार्य है। **तस्मात्सर्वं ब्रह्म परामृतं परममृतमहमेवेति यो वेद निहितं गुहायां हृदि सर्वप्राणिनां स एवं विज्ञानादविद्याग्रन्थिं ग्रन्थिमिव दृढीभूतामविद्यावासनां विकिरति विक्षिपति नाशयतीह जीवन्नेव न मृतः सन्हे प्रियदर्शन।। १०।।** इसलिए यह सब पर अमृत ब्रह्म है और परामृत ब्रह्म मैं ही हूँ– ऐसा जो पुरुष समस्त प्राणियोंके हृदय में स्थित उस ब्रह्मको जानता है, हे सोम्य! हे प्रियदर्शन! वह अपने ऐसे विज्ञानसे अविद्याग्रन्थिको यानी ग्रन्थि (गाँठ)के समान सुदृढ हुई अविद्याकी वासनाको इस लोकमें जीवित रहते ही काट डालता है, मरकर नहीं।। १०।।

इत्यथर्ववेदीयमुण्डकोपनिषद्भाष्ये द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः।। २-१।।

यत्पृष्टं कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति तन्निरूपितम्। सर्वमिदं परमात्मनो जायते। अतस्तावन्मात्रं सर्वं तस्मिन्विज्ञाते विज्ञातं भवतीत्य-विद्याक्षयफलाभिधानेनोपसंहृतमिति।। १०।। मुण्डकमें जो पूछा था कि भगवन्! किसके जाननेसे यह सब कुछ जाना जाता है, उसका निरूपण किया गया। यह सब कुछ परमात्मासे उत्पन्न होता है। अतः परमात्मामात्र सब कुछ है। उसके ज्ञानसे सबकुछ जाना जाता है, इस प्रकार अविद्याके क्षयके फलका कथन के द्वारा उपसंहार किया गया है।। १०।।

इति मुण्डकोपनिषद्भाष्यटीकायां द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः।। २-१।।

(द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः)

अधुना यस्य सकृदुपदेशमात्रेणाद्वितीयं ब्रह्मास्मीतिवाक्यार्थज्ञानं न भवतीति तस्योपायानुष्ठानेन भवितव्यमित्यभिप्रेत्याऽऽह- अरूपं सदक्षरमिति। अब जिसका एकबार उपदेशसे अद्वितीय ब्रह्म हूँ इस प्रकार वाक्यार्थज्ञान नहीं होता है; उसके लिए अनुष्ठानके द्वारा वह ज्ञान हो सकता है, इस अभिप्राय से भाष्यकार कहते हैं- **अरूपं सदक्षरं केन प्रकारेण विज्ञेयमिति।** रूपहीन होनेपर भी उस अक्षरको किस प्रकार जानना चाहिए? **वाक्यार्थस्यैव पुनः पुनर्भावना युक्त्यनुसंधानं चोपाय इत्याह- उच्यत इति।** वाक्यार्थका बार-बार भावना, युक्ति और अनुसंधान ये उपाय हैं। इसे कहते हैं- **उच्यते-** यह अब बतलाया जाता है-

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम्।
एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं
विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम्।। १।।

आविः संनिहितं- यह ब्रह्म प्रकाशमान् और हृदयमें निहित है। **गुहाचरं नाम-** बुद्धिरूप गुहामें दर्शनश्रवणादि द्वारा विचरण करनेवाला है। **महत्पदम्-** यह समस्त पदार्थोंका आस्पद होनेसे

महत्पद है। **एजत् प्राणत् निमिषत् च एतत् अत्र समर्पितम्–** महत्पद है क्योंकि इसीमें चलनेवाले, प्राणन करनेवाले और निमेषोन्मेष करने वाले ये सब समर्पित हैं। **यत् सदसत् वरेण्यं प्रजानां विज्ञानात् परं वरिष्ठं एतत् जानथ–** जो सत् असत्रूप, पूजनीय, प्रजाओंके विज्ञान से पर है और सर्वोत्कृष्ट है उसे जानो।। १।।

आविः प्रकाशं संनिहितं वागाद्युपाधिभिर्ज्वलति भ्राजतीति श्रुत्यन्तराच्छब्दादीनुपलभमानवदवभासते। दर्शनश्रवणमननविज्ञानाद्यु–पाधिधर्मैराविर्भूतं संल्लक्ष्यते हृदि सर्वप्राणिनाम्। आविः अर्थात् प्रकाश और संनिहित है अर्थात् 'वाणी आदि उपाधियोंके द्वारा प्रज्वलित होता है, प्रकाशित होता है' ऐसी एक अन्य श्रुतिके अनुसार वह शब्दादि विषयोंको उपलब्ध करता–सा जान पड़ता है अर्थात् संपूर्ण प्राणियोंके हृदयमें दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान आदि उपाधिके धर्मोंसे आविर्भूत हुआ दिखायी देता है। **आविःशब्दो निपातः प्रकाशवाची। ब्रह्म विश्वोपलब्ध्यात्मना प्रकाशमानमेव सदेति भावयेदित्यर्थः।** आविः शब्द निपात है और प्रकाकवाची है। विश्वकी उपलब्धिरूपसे ब्रह्म प्रकाशमान ही सत् है इस प्रकार ऐसी भावना यानी चिन्तन करें। **अन्यैरप्युक्तम्– 'यदस्ति यद्भाति तदात्म–रूपं नान्यत्ततो भाति न चान्यदस्ति। स्वभावसंवित्प्रतिभाति केवलं ग्राह्यं ग्रहीतेति मृषैव कल्पना' इति।** विष्णु पुराणमें भी इस प्रकार कहा गया है कि जो कुछ है और जो कुछ प्रकाशित होता है वह आत्माका स्वरूप है। उससे भिन्न कुछ न है न प्रकाशित होता है। केवल अपनेस्वभावरूप संवित् (चैतन्य) ही प्रकाशित होता है। ग्राह्य विषय और ग्रहीता ग्रहणकर्ता आदि सब कुछ मिथ्या कल्पना मात्र है। **यदेतदाविर्ब्रह्म संनिहितं सम्यक्स्थितं हृदि तद्गुहाचरं नाम। गुहायां चरतीति दर्शनश्रवणादिप्रकारैर्गुहाचरमिति प्रख्यातम्।** जो यह प्रकाशमान् ब्रह्म हृदयमें अच्छीप्रकारसे स्थित है वह गुहाचर नामवाला है। दर्शन–श्रवणादि प्रकारोंसे गुहा (बुद्धि)में विचरण करता है इसलिए गुहाचर नामसे प्रसिद्ध है। **सर्वमिदं कार्यं परिच्छिन्नं च सास्पदं कार्यत्वात्परिच्छिन्नत्वाच्च घटादिवत्ततः सर्वास्पदं यत्तदेव मायास्पदमात्मभूतमिति**

युक्त्यनुसंधानमाह- महत्पदमिति।। १।। यह सब जो कार्य है और परिच्छिन्न है, वह सास्पद (आश्रयवाला) है, कार्य होनेसे और परिच्छिन्न होनेसे, घटादिके समान। उससे जो सबका आस्पद है वह मायाका भी आत्मभूत आस्पद-आश्रय है। इस युक्ति-अनुसंधानको कहते हैं- **महत्सर्वमहत्त्वात्। पदं पद्यते सर्वेणेति सर्वपदार्थास्पदत्वात्।** वह महत्पद है। सबसे बडा होनेसे महान् है। सबके आश्रय होनेसे सबसे प्राप्त किया जाता है इससे वह पद है। **कथं तन्महत्पदमित्युच्यते। यतोऽत्रास्मिन्ब्रह्मण्येतत्सर्वं समर्पितं प्रवेशितं रथनाभाविवाराः।** वह महत्पद किस प्रकार है? सो बतलाते हैं- क्योंकि इस ब्रह्ममें ही, रथकी नाभिमें अरोंके समान यह सब कुछ समर्पित अर्थात् भली भाँति प्रविष्ट हैं, इससे महत् पद है। **एजच्चलत्पक्ष्यादि, प्राणत्प्राणितीति प्राणापानादिमन्मनुष्यपश्वादि निमिषच्च यन्निमेषादि क्रियावद्यच्चानिमिषच्चशब्दात्समस्तमेतदत्रैव ब्रह्मणि समर्पितम्।** एजत् यानी चलतेहुए पक्षी आदि, प्राणन क्रिया करता है इससे प्राणत् यानी प्राण-अपानवाले मनुष्य, पशु आदि, निमिषत् च यानी निमेषादि क्रियावाले और चकार से जो निमेष क्रिया न करनेवाले; वे सभी इस ब्रह्ममें ही समर्पि हैं। **एतद्यदास्पदं सर्वं जानथ हे शिष्या अवगच्छथ तदात्मभूतं भवतां सदसत्स्वरूपम्। सदसतोर्मूर्तामूर्तयोः स्थूलसूक्ष्मयोस्तद्व्यतिरेकेणाभात्।** हे शिष्यगण! ये सत् असत् स्वरूपवाले सब जिस आश्रयवाले हैं उस ब्रह्मको अपनी आत्माके रूपमें जानो। क्योंकि उसके अतिरिक्त सत्-असत् यानी मूर्त-अमूर्त यानी स्थूल-सूक्ष्म कोई भी पदार्थ नहीं है। **वरेण्यं वरणीयं तदेव हि सर्वस्य नित्यत्वात्प्रार्थनीयम्।** और वही नित्य होनेसे सबका वरेण्य यानी वरणीय यानी प्रार्थनाके योग्य है। **परं व्यतिरिक्त विज्ञानात्प्रजानामिति व्यवहितेन सम्बन्धः यल्लोकिकविज्ञानागोचरमित्यर्थः।** वह प्रजाओंके विज्ञानसे पर अर्थात् भिन्न है। परं विज्ञानात् शब्दोंका व्यवहित प्रजानां शब्दके साथ सम्बन्ध है। अर्थात् लौकिक

विज्ञानका अविषय है। **यद्वरिष्ठं वरतमं सर्वपदार्थेषु वरेषु तद्ध्येकं ब्रह्मातिशयेन वरं सर्वदोषरहितत्वात्।** और जो वरिष्ठ यानी सभी पदार्थोंमें श्रेष्ठतम है। समस्त दोषोंसे रहित होनेसे ब्रह्म निरतिशय श्रेष्ठ है।। १।।

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च। तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः। तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि।। २।।

यत् अर्चिमत् यत् अणुभ्यः अणु च यस्मिन् लोकाः लोकिनश्च निहिताः– और भी जो दीप्तिमान्, जो अणुसे भी अणु है और जिसमें सारे लोक और उनके निवासी स्थित हैं, **तत् एतत् अक्षरं ब्रह्म सः प्राणः तत् उ वाक् मनः–** वही यह अक्षर ब्रह्म है, वही प्राण है, वही वाणी और मन है। **तत् एतत् सत्यं तत् अमृतं सोम्य वेद्धव्यं तत् विद्धि–** वही यह सत्य और वही अमृत है। हे सोम्य! उसका वेधन करना चाहिए। तू उसे जान।। २।।

घटादिवदादित्यादेर्जडत्वेऽपि यद्दीप्तिमत्त्वं वैचित्र्यं तदनुपपत्त्याऽपि तत्कारणं संभावनीयमित्याह– किंच यदर्चिमदिति। घटादिके समान आदित्यादिके जड़ होने पर भी उनमें जो दीप्तिवाला होना विचित्रता है उसकी अनुपपत्तिसे भी उनका कारण की संभावना करनी चाहिए, इसे कहते हैं– **किंच यदर्चिमद्दीप्तिमत्तद्दीप्त्याऽऽदित्यादि दीप्यत इति दीप्तिमद्ब्रह्म।** और भी जो अर्चिमान् यानी दीप्तिमान् है, क्योंकि उसकी दीप्तिसे आदित्यादि देदीप्यमान होते हैं, इससे ब्रह्म दीप्तिमान् है। **अर्चिमत्त्वादादित्यादिवदिन्द्रियग्राह्यत्वं प्राप्तं निषेधति– यदणुभ्य इति।** दीप्तिमान् होनेसे आदित्यादिके समान इन्द्रिय ग्राह्य होगा, इसका निषेध करते हैं– **किंच यदणुभ्यः श्यामाकादिभ्योऽप्यणु च सूक्ष्मम्।** और जो श्यामाक (सावां चावल) आदि सूक्ष्म पदार्थों से भी अणु यानी सूक्ष्म है। **परमाणुपरिमाणत्वं तर्हि स्यादिति नाऽऽशंकनीयमित्याह– च शब्दादिति।** तब तो वह परमाणु परिमाणवाला

होगा, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, इसपर कहते हैं- **च शब्दात्स्थूलेभ्योऽ-प्यतिशयेन स्थूलं पृथिव्यादिभ्यः।** च शब्दसे पृथिवी आदि स्थूल से भी स्थूल है। **स्थूलत्वात्तर्ह्यन्याधारं स्यादिति नाऽऽशंकनीयमित्याह- यस्मिँल्लोका इति।** तब तो स्थूल होनेसे उसका कोई अन्य आधार होगा, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, इसपर कहते हैं- **यस्मिल्लोका भूरादयो निहिताः स्थिताः ये च लोकिना लोकनिवासिनो मनुष्यादयश्चैतन्याश्रया हि सर्वे प्रसिद्धाः।** जिसमें भू आदि लोक निहित यानी स्थित है तथा जो इन लोकोंके निवासी मनुष्यादि स्थित है। क्योंकि सभी चैतन्यके आश्रित होते हैं यह प्रसिद्ध है। **प्राणादिप्रवृत्तिश्चेतनाधिष्ठाननिबन्धना जडप्रवृत्तित्वाद्रथादिप्रवृत्ति-वच्चिद्भेदे च प्रमाणाभावदेकचैतन्यमात्रमस्मीति विचारयेदित्याह- तदेतत्सर्वाश्रय-मिति।** प्राण आदिकी प्रवृत्ति चैतन्य-अधिष्ठानके कारण है, जड़प्रवृत्ति होनेसे, रथ आदिकी प्रवत्तिके समान। और चैतन्यभेदमें प्रमाण न होनेसे एक चैतन्य मात्र हूँ इस प्रकार विचार करें। इसे कहते हैं- **तदेतत्सर्वाश्रयमक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनो वाक्च मनश्च सर्वाणि च करणानि तदन्तश्चैतन्यं चैतन्याश्रयो हि प्राणेन्द्रिययादिसर्वसंघातः 'प्राणस्य प्राणम्' (बृ.४.४.१८) इति श्रुत्यन्तरात्।** वही सबका आश्रयभूत यह अक्षर ब्रह्म है, वही प्राण है तथा वही वाणी और मन आदि समस्त इन्द्रियवर्ग है; उन सभीके अन्दर चैतन्य है, क्योंकि प्राण और इन्दिय आदिका सारा संघात चैतन्यके ही आश्रित है। 'वह प्राणका प्राण है' इस दूसरी श्रुतिसे भी यह बात सिद्ध होती है। **यत्प्राणादीनामन्तश्चैतन्य-मक्षरं तदेतत्सत्यमवितथमतोऽमृतमविनाशि तद्वेद्धव्यं मनसा ताडयित-व्यम्। तस्मिन्मनःसमाधानं कर्तव्यमित्यर्थः। यस्मादेवं हे सोम्य विद्धय-क्षरे चेतः समाधत्स्व।। २।।** जो प्राणादियोंके अन्दर चैतन्य अक्षर है वही यह सत्य यानी अवितथ (मिथ्या नहीं) है। अवितथ होनेसे अमृत यानी अविनाशी है। उसका वेधन अर्थात् मनसे ताडन करना चाहिए। अर्थात् उसमें मनको समाहित करना चाहिए। हे सोम्य!

क्योंकि ऐसी बात है, इसलिए तू इस वेधन करने योग्यको [1]जान यानी उस अक्षरमें अपने चित्तको समाहित कर।। २।।

प्राणाद्यधिष्ठानत्वात्प्राणा- दिलक्ष्य आत्मा द्रष्टव्यः।। २।। प्राणआदिका अधिष्ठान होनेसे प्राणादिका लक्ष्य आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए।। २।। १. यहाँ मूलमें और भास्य में विद्धि क्रिया है अर्थात् जान। किन्तु गीताप्रेस और कैलास के पुस्तकमें हिन्दी अर्थमें कहा गया है कि वेधन कर। विध् धातुका लोट लकारमें विध ऐसा रूप होना चाहिए जिसका अर्थ वेधन कर होना चाहिए।

विचारासमर्थस्य प्रणवमबलम्ब्य ब्रह्मात्मैकत्वे चित्तसमाधानं क्रममुक्तिफलं दर्शयितुमपक्रमते- उपासनामें असमर्थ प्रणवको आलम्बन करके ब्रह्म और आत्माके एकत्वमें चित्तका समाधान, क्रममुक्ति फल देता है। इस बातको दिखाने के लिए कहते हैं- **कथं वेद्धव्यमित्युच्यते-** उसका वेधन किस प्रकार करना चाहिए, सो बतलाया जाता है-

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत। आयम्य तद्भागवतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि।। ३।।

औपनिषदं महास्त्रं धनुः गृहीत्वा तत् भागवतेन चेतसा आयम्य हि उपासानिशितं शरं संधयीत- उपनिषदोंमें होनेवाले (वर्णित) प्रणवरूप महान् अस्त्रको ग्रहण कर ब्रह्मभावनासे भावित मनसे उपासनासे से तीक्ष्ण किया हुआ बाण (आत्मा)से लक्ष्यका संधान कर। **सोम्य लक्ष्यं तदेव अक्षरं विद्धि-** हे सोम्य उस अक्षरको लक्ष्य जान।। ३।।

धनुरिष्वासनं गृहीत्वाादायौपनिषदमुपनिषत्सु भवं प्रसिद्धं महास्त्रं महच्च तदस्त्रं च महास्त्रं धनुस्तस्मिन्शरम्। उपनिषदोंमें होनेवाला प्रसिद्ध प्रणवरूप महान् अस्त्र धनुको यानी इष्वासको ग्रहण कर उसमें शर (बाणका संधान कर)। जो महान् है और अस्त्र है वह महास्त्र है। (इषु- बाण, इष्वास- धनुष)। **किंविशिष्टम् इत्याह- उपासना- निशितं सन्तताभिध्यानेन तनूकृतं संस्कृतमित्येतत्। संधयीत संधानं**

कुर्यात्। वह शर-बाण किस विशेषतासे युक्त है इस पर कहते हैं कि निरन्तर ध्यान द्वारा धार दिया गया अर्थात् संस्कार किया गया बाण का संधान करे (बाणरूप आत्मा को चढ़ावे)। **प्रणवो ब्रह्मेत्यभिध्यायत उपसंहृतकरणग्रामस्य प्रणवोपरक्तं यच्चेतन्यप्रतिबिम्बं स्फुरति स आत्मेत्यनुसंधानं प्रणवे शरसंधानं तस्य चित्प्रतिबिम्बस्य विम्बैक्यानुसंधानं लक्ष्यवेधः।। ३।।** जिसका करण समुदाय उपसंहृत है ऐसे प्रणवको ब्रह्मरूपसे ध्यान करनेवालाका प्रणवसे रंजित जो चैतन्य-प्रतिबिम्बका स्फुरण होता है वह आत्मा है, इस प्रकारका अनुसंधानको प्रणवमें शरका संधान कहते हैं। उस चैतन्य प्रतिबिम्बका बिम्बके साथ एकतारूप अनुसंधान को लक्ष्यवेध कहते हैं।।३।।

यदुक्तं धनुरादि तदुच्यते- ऊपर जो धनुष आदि बतलाये गये सो कहते हैं-

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।। ४।।

प्रणवः धनुः शरः हि आत्मा ब्रह्म तत् लक्ष्यं उच्यते- प्रणव धनु है, जीवात्मा बाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है। **अप्रमत्तेन वेद्धव्यम्-** प्रमादसे रहित होकर उस लक्ष्यका वेधन करना चाहिए। **शरवत् तन्मयः भवेत्-** बाणके समान तन्मय यानी लक्ष्यसे अभिन्न हो जाइये।। ४।।

प्रणव ओंकारो धनुः। यथेष्वासनं लक्ष्ये शरस्य प्रवेशकारणं तथाऽऽत्मशरस्याक्षरे लक्ष्ये प्रवेशकारणमोंकारः। प्रणव यानी ओंकार धनुष है। जिस प्रकार इष्वास (धनु) लक्ष्यमें बाणके प्रवेशका साधन है उसी प्रकार बाण स्थानीय जीवात्मा के अपने लक्ष्य अक्षरमें प्रवेश कारण ओंकार है। **प्रणवेन ह्यभ्यस्यमानेन संस्क्रियमाणस्तदालम्बनोऽ-प्रतिबन्धेनाक्षरेऽवतिष्ठते यथा धनुषाऽऽस्त इषुर्लक्ष्ये। अतः प्रणवो धनुरिव धनुः।** जैसे धनुषसे छोड़ा गया इषु-बाण लक्ष्यमें रहता है, वैसे अभ्यास किये हुए प्रणव के द्वारा ही संस्कृत होकर वह उसके

आलंबनसे प्रतिबन्धके बिना अक्षर ब्रह्ममें प्रतिष्ठित होता है। इससे धनुषके समान होनेसे प्रणव धनुष है। **शरो ह्यात्मोपाधिलक्षणः पर एव जले सूर्यादिवदिह प्रविष्टो देहे सर्वबौद्धप्रत्यसाक्षितया।** तथा आत्मा ही बाण है, जो कि जलमें प्रर्तिबिम्बित हुए सूर्य आदिके समान इस शरीरमें संपूर्ण बुद्धिके प्रत्ययोंके साक्षी रूपसे प्रविष्ट हुआ है। **स शर इव स्वात्मन्येवार्पितोऽक्षरे ब्रह्मण्यतो ब्रह्म तल्लक्ष्य-मुच्यते। लक्ष्य इव मनःसमाधित्सुभिः आत्मभावेन लक्ष्यमाणत्वात्।** वह साक्षी बाणके समान अपने ही स्वरूप अक्षर ब्रह्ममें समर्पित है, इसलिए ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा गया है। क्योंकि मनको समाहित करनेकी इच्छावाले पुरुषोंके वही आत्मभावसे लक्षित होता है।

तत्रैवं सत्यप्रमत्तेन बाह्यविषयोपलब्धितृष्णाप्रमादवर्जितेन सर्वतो विरक्तेन जितेन्द्रियेणैकाग्रचित्तेन वेद्धव्यं ब्रह्म लक्ष्यम्। जब की ऐसी बात है तो अप्रमत्त होकर अर्थात् बाह्यविषयोंकिी उपलब्धिकी तृष्णा-रूप प्रमादसे रहित होकर, यानी सभी पदार्थोंसे वैराग्य प्राप्त कर, इन्द्रियोंको वशमें करके, एकाग्र चित्तसे ब्रह्मरूप अपने लक्ष्यका वेधन करना चाहिए। **ततस्तद्वेधनादूर्ध्वं शरवत्तन्मयो भवेत्। यथा शरस्य लक्ष्यैकात्मत्वं फलं भवति तथा देहाद्यात्मप्रत्ययतिरस्करणेनाक्षरैकात्मत्वं फलमापादयेदित्यर्थः।। ४।।** तब उस वेधनके बाद बाणके समान ब्रह्ममय हो जाए। जैसे बाणका अपने लक्ष्यसे एकरूप हो जाना ही फल होता है, वैसे देहादिमें आत्मबुद्धिके तिरस्कारसे अक्षरब्रह्मसे एकात्मरूप फल प्राप्त करे।। ४।।

यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्ष-
मोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवेकं जानथ आत्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः।।

यस्मिन् द्यौः पृथिवी च अन्तरिक्षं सर्वैः प्राणैश्च मनःओतम्– जिसमें द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और सभी इन्द्रियोंके साथ मन समर्पित हैं, **तं एव एकं आत्मानं जानथ–** उसी एक आत्माको ही जानो। **अन्या वाचः विमुंचथ–** और सब बातोंको छोड़ दो। **एषः अमृतस्य सेतुः–** क्योकि यह अमृत यानी मोक्षका सेतु यानी साधन है।। ५।।

उत्तरग्रन्थस्य पौनरुक्त्यं परिहरति– अक्षरस्यैव दुर्लक्ष्यत्वादिति। आगेके ग्रन्थका पुनरुक्तिदोषका परिहार करते हैं– **अक्षरस्यैव दुर्लक्ष्यत्वात्पुनः पुन–र्वचनं सुलक्षणार्थम्।** कठिनतासे अक्षरब्रह्मका ज्ञान होनेसे उसको सुगमतासे जाननेके लिए उसका बार–बार कथन है। **यस्मिन्नक्षरे पुरुषे द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षं चोतं समर्पितं मनश्च सह प्राणैः करणै–रन्यैः सर्वैस्तमेव सर्वाश्रयमेकमद्वितीयं जानथ जानीत हे शिष्याः।** हे शिष्यगण! जिस अक्षर पुरुषमें द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और प्राणों यानी अन्य समस्त करणोंके सहित मन ओत अर्थात् समर्पित है, उस सबका आश्रय, एक, अद्वितीय आत्माको जानो। **आत्मानं प्रत्य–क्स्वरूपं युष्माकं सर्वप्राणिनां च ज्ञात्वा चान्या वाचोऽपरविद्यारूपा विमुञ्चथ विमुंचत परित्यजत तत्प्रकाश्यं च सर्वं कर्म ससाधनम्।** अपने और सब प्राणियोंके आन्तरिकस्वरूपको जानकर अपरविद्या रूप अन्य वाणीको तथा उस वाणीसे प्रकाशित होनेवाले समस्त कर्मको साधन सहित त्याग दो। **ससाधनं सर्वं कर्म परित्यज्याऽऽत्मैव ज्ञातव्य इत्यत्रैव हेतुमाह– अमृतस्येति। यतोऽमृतस्यैष सेतुरेतदात्मज्ञानममृ–तस्यामृतत्वस्य मोक्षस्य प्राप्तये सेतुरिव सेतुः संसारमहोदधेः उत्तरण–हेतुत्वात्तथा च श्रुत्यन्तरं 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वे.३.८, ६.१५) इति।। ५।।** क्योंकि यह अमृतका सेतु है अर्थात् यह आत्मज्ञान संसार–सागरको पार करानेका साधन होनेसे मोक्षरूप अमरत्वकी प्राप्तिके लिए सेतुके समान सेतु (पुल)

है। इस बातको दूसरी श्रुति भी बताती है 'उसीको जानकर पुरुष मृत्युको पार कर जाता है। इस ज्ञानके सिवा और कोई मार्ग नहीं है'। इस प्रकार। **धनुषाऽऽयुधेन लक्ष्यत इति तल्लक्षण आत्मैकत्वसाक्षात्कार इत्यर्थः।। ५।।** प्रणवरूप धनु-आयधके द्वारा वह अक्षर लक्षित होता है इससे उस लक्षणक आत्मसाक्षात्कार। (टिप्पणीकार का कहना है कि प्रमादसे यह पंक्ति जूड गयी है)।। ५।।

किंच- और भी-

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्।। ६।।

रथनाभौ अराः इव यत्र नाड्यः संहताः सः एषः बहुधा जायमानः अन्तः चरते- रथचक्रकी नाभिमें जिस प्रकार अरे लगे होते होत हैं उसी प्रकार जिस हृदयमें समस्त नाडियाँ एकत्रित होती हैं, अनेक प्रकारसे उत्पन्न हुआ वह पुरुष उस हृदयके भीतर संचार करता है यानी स्थित है। **आत्मानं ओम् इति एवं ध्यायथ-** उस आत्माका 'ओम्' इस प्रकार ध्यान करो। **तमसः परस्तात् पाराय वः स्वस्ति-** अज्ञानके उस पार जानेमें तुम्हारा कल्याण हो अर्थात् तुम्हें किसी प्रकारका विघ्न ना हो।। ६।।

अरा इव, यथा रथनाभौ समर्पिता अरा एवं संहताः सम्प्रविष्टा यत्र यस्मिन्हृदये सर्वतो देहव्यापिन्यो नाड्यस्तस्मिन्हृदये बुद्धिप्रत्ययसाक्षिभूतः स एष प्रकृत आत्मान्तर्मध्ये चरते चरति वर्तते। अरोंके समान अर्थात् जैसे रथकी नाभिमें अरे समर्पित रहते हैं, वैसे शरीरमें सर्वत्र व्याप्त नाडियाँ जिस हृदयमें संहत यानी प्रविष्ट हैं उसके भीतर प्रसंग प्राप्त बुद्धिप्रत्ययोंका साक्षीभूत वह आत्मा विचरण करता है अर्थात् रहता है। **पश्यञ्शृण्वन्मन्वानो विजान-**

न्बहुधाऽनेकधा क्रोधहर्षादिप्रत्ययैर्जायमान इव जायमानोऽन्तःकरणोपा-ध्यनुविधायित्वाद्वदन्ति लौकिका हृष्टो जातः क्रुद्धो जात इति। देखता, सुनता, मनन करता और जानता हुआ अनेक प्रकारसे क्रोध, हर्ष आदि प्रत्ययोंसे अन्तःकरणरूप उपाधिका अनुकरण करनेसे जन्म लेता हुआ-सा जन्म लेता है। संसारमें लोग कहते हैं 'हृष्टः जातः क्रुद्ध जात' हर्षित हुआ और क्रोधित हुआ में जैसे जात शब्दका प्रयोग करते हैं उसी प्रकार यहाँ जायमान शब्दका प्रयोग हुआ है। **तमात्मानमोमित्येवमोंकारालम्बनाः सन्तो यथोक्तकल्पनया ध्यायथ चिन्तयत।** 'ओम्' इस प्रकार उपर्युक्त कल्पनासे ओंकारको आलम्बन बनाकर उस आत्माका ध्यान यनी चिन्तन करो।

उक्तं वक्तव्यं च शिष्येभ्य आचार्येण जानता। ज्ञानवान् आचार्य के द्वारा शिष्योंसे जो कुछ कहना था वह कह दिया। **शिष्याश्च ब्रह्मविद्याविविदिषुत्वान्निवृत्तकर्माणो मोक्षपथे प्रवृत्ताः।** इससे ब्रह्मविद्याके जिज्ञासु होनेके कारण शिष्यगण भी सब कर्मोंसे उपरत होकर मोक्ष-मार्गमें प्रवृत्त हुए। **तेषां निर्विघ्नतया ब्रह्मप्राप्तिमाशस्त्याचार्यः।** अतः आचार्य उन्हें निर्विघ्नतापूर्वक ब्रह्मप्राप्तिका आशीर्वाद देते हैं। **स्वस्ति निर्विघ्नमस्तु वो युष्माकं पाराय परकूलाय परस्तात्कस्मादविद्या तमसः। अविद्यारहितब्रह्मात्मस्वरूपगमनायेत्यर्थः।** परसे पारके लिए। परसे यानी किससे? अविद्यारूप तमसे पार जाने के लिए अर्थात् नदीके तीर जैसे तीर पर जानेके लिए यानी अविद्यासे रहित ब्रह्मको आत्मरूपमें प्राप्त करनेके लिए तुम्हें स्वस्ति यानी निर्विघ्नता प्राप्त हो।। ६।। **कर्मसंगिजनसंगत्या कर्मश्रद्धा विषयश्रद्धा च वाक्यार्थज्ञानस्यावगमाय गत्यन्ततायाः प्रतिबन्धको विघ्नः स मा भूदित्याशंसनं, नतु वाक्यार्थवगतौ निष्प-नायां फलप्राप्तेर्विघ्नशंकाऽस्तीत्यभिप्रेत्याऽऽह- परस्तादिति। मदुपदेशदूर्ध्वमित्यर्थः।। ६।।** कर्ममें आसक्तिवाले लोगोंके साथ संगतिसे कर्ममें और विषयोंमें श्रद्धा होना यह वाक्यार्थज्ञानकी उपलब्धिरूप आखीर गतिका प्रतिबन्धक यानी विघ्न है। वह न हो इसलिए आशीर्वाद है; न कि वाक्यार्थ के ज्ञान होने पर फलप्राप्ति

निष्पन्न हो जानेसे विघ्नकी शंका नहीं रहती है। इस अभिप्रायसे कहते हैं कि परस्तात्। अर्थात् मेरे उपदेशके बाद ज्ञानप्राप्तिमें विघ्न न हो।। ६।।

सर्वेश्वरत्वमनोमयत्वादिगुणविशिष्टब्रह्मणो हृदयपुण्डरीके ध्यानं च क्रम-मुक्तिफलं मन्दब्रह्मविदो विधीयते इति दर्शयितुमाह– योऽसौ तमसः परस्तादित्या-दिना।। ७।। सर्वेश्वरता मनोमयता आदि गुणोंसे विशिष्ट ब्रह्मका हृदयकमलमें ध्यान क्रममुक्ति फलवाला है, उसे मन्दब्रह्मज्ञानियोंके लिए विधान किया जाता है। इसे दिखानेके लिए कहते हैं– **योऽसौ तमसः परस्तात्संसारमहोदधिं तीर्त्वा गन्तव्यः परविद्याविषय इति स कस्मिन्वर्तत इत्याह–** यह जो अज्ञान रूप अन्धकारके परे संसामहासागरको पार करके जानेयोग्य है, परविद्याका विषय है वह किसमें रहता है इसपर कहते हैं–

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः।।
मनोमयः प्राणशरीरनेता
प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा
आनन्दरूपममृतं यद्विभाति।। ७।।

यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य भुवि एष महिमा ह एषः आत्मा दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि प्रतिष्ठितः। जो सर्वज्ञ और सर्ववित् है और जिसकी भूलोकमें यह महिमा है, वह यह आत्मा निश्चितरूपसे दिव्य ब्रह्मपुर आकाशमें यानी हृदयाकाशमें प्रतिष्ठित है। **मनोमयः प्राणशरीरनेता–** वह मनोमय तथा प्राण और शरीरको ले जानेवाला है। **अन्ने हृदयं सन्निधाय प्रतिष्ठितः–** वह अन्न अर्थात् शरीरमें हृदयको आश्रित हो प्रतिष्ठित है यानी हृदयमें अवस्थित है। **धीराः तत् विज्ञानेन यत् आनन्दरूपं अमृतं विभाति (तत्) परिपश्यन्ति–** विवेकी पुरुष उस आत्माके ज्ञानसे जो आनन्दरूप अमृत प्रकाशित हो रहा है, उसका सर्वत्र साक्षात्कार करते हैं।। ७।।

यः सर्वज्ञः सर्वविद्व्याख्यातः तं पुनर्विशिनष्टिः, यस्यैष प्रसिद्धो महिमा विभूतिः। जो सर्वज्ञ और सर्ववित् है इसकी व्याख्या पहले (मुं१.१.९) में की जा चुकी है। उसीके फिर और विशेषण बतलाते हैं कि जिसकी यह प्रसिद्ध महिमा यानी विभूति है। **कोऽसौ महिमा। यस्येमे द्यावापृथिव्यौ शासने विधृते तिष्ठतः।** वह कौनसी महिमा है? इसपर भाष्यकार कहते हैं कि ये द्युलोक और पृथिवी जिसके शासनमें अपने स्थान पर स्थिर हैं। **सूर्याचन्द्रमसौ यस्य शासनेऽलातचक्रवदजस्रं भ्रमतः।** जिसके शासनमें सूर्य और चन्द्रमा अलातचक्रके समान निरन्तर घूमते रहते हैं। **यस्य शासने सरितः सागराश्चस्वगोचरं नातिक्रामन्ति।** जिसकी शासनमें नदियाँ और समुद्र अपने तटका अतिक्रमण नहीं करते हैं। **तथा स्थावरं जंगमं च यस्य शासने नियतम्।** इसी प्रकार स्थावर और जंगम जगत् जिसके शासनमें नियमित रहते हैं। **तथा चर्तवोऽयने अब्दाश्च यस्य शासनं नातिक्रामन्ति।** इसी प्रकार ऋतु, अयन और वर्ष भी जिसके शासन का उल्लंघन नहीं करते हैं। **तथा कर्तारः कर्माण फलं च यच्छासना- त्स्वं कालं नातिवर्तन्ते-** वैसे ही कर्ता, कर्म और फल जिसके शासन से अपने-अपने कालका अतिक्रमण नहीं करते हैं। **स एष महिमा भुवि लोके यस्य स एष सर्वज्ञ एवं महिमा देवो दिव्ये द्योतनवति सर्वबौद्धप्रत्ययकृतद्योतने ब्रह्मपुरे ब्रह्मणोऽत्र चैतन्यस्वरूपेण नित्याभि- व्यक्तत्वाद्ब्रह्मणः पुरं हृदयपुण्डरीकं तस्मिन्यद्व्योम तस्मिन्व्योम्न्याकाशे हृत्पुण्डरीकमध्यस्थे प्रतिष्ठित इवोपलभ्यते।** जिसकी संसारमें ऐसी महिमा है वह यह सर्वज्ञ ऐसी महिमावाला देव, दिव्य अर्थात् समस्त बौद्धिक प्रत्यय(ज्ञान)से होनेवाले प्रकाशसे प्रकाशित ब्रह्मपुरमें प्रति- ष्ठित है। क्योंकि यहाँ चैतन्यरूपसे ब्रह्म नित्य अभिव्यक्त होता है, इससे ब्रह्मका पुर अर्थात् हृदयकमल, उसमें जो आकाश है, उस आकाशमें अर्थात् हृदयकमलके बीच प्रतिष्ठित-रहता हुआ-सा

उपलब्ध होता है। **न ह्याकाशवत्सर्वगतस्य गतिरागतिः प्रतिष्ठा वान्यथा सम्भवति।** आकाशके समान सर्वव्यापककी गति, आगति या प्रतिष्ठा (जाना, आना या रहना) और किसी प्रकार संभव नहीं है। **स ह्यात्मा तत्रस्थो मनोवृत्तिभिरेव विभाव्यत इति मनोमयो मनउपाधित्वा-त्प्राणशरीरनेता प्राणश्च शरीरं च प्राणशरीरं तस्यायं नेता स्थूलाच्छ-रीराच्छरीरान्तरं प्रति।** हृदयाकाशमें स्थित वही आत्मा मनोवृत्तिसे ही अनुभव किया जाता है; इसलिए मनरूप उपाधिवाला होनेसे मनोमय है। वह प्राण और शरीरका नयन कर्ता है- प्राण और शरीर प्राणशरीर उसको वह ले जानेवाला है अर्थात् एक स्थूलशरीरसे दूसरे शरीरमें ले जाता है। **प्रतिष्ठितोऽवस्थितोऽन्ने भुज्यमानान्नवि-परिणामे प्रतिदिनमुपचीमानेऽपचीयमाने च पिण्डरूपान्ने हृदयं बुद्धिं पुण्डरीकच्छिद्रे संनिधाय समवस्थाप्य।** वह अन्नमें प्रतिष्ठित यानी अवस्थित है। खाये गये अन्नके परिणामरूप और निरन्तर बढ़ने-घटनेवाले पिण्डरूप अन्नरूप शरीरमें स्थित कमलाकार आकाश में हृदय अर्थात् बुद्धिको स्थापन कर प्रतिष्ठित है। **हृदयावस्थानमेव ह्यात्मनः स्थितिर्न ह्यात्मनः स्थितिरन्ने।** हृदयमें अवस्थान ही आत्माकी स्थिति है न कि शरीरमें आत्माकी स्थिति है।

तदात्मतत्त्वं विज्ञानेन विशिष्टेन शास्त्राचार्योपदेशजनितेन ज्ञानेन शमदमध्यानसर्वत्यागवैराग्योद्भूतेन परिपश्यन्ति सर्वतः पूर्णं पश्यन्त्युपलभन्ते धीरा विवेकिनः आनन्दरूपं सर्वानर्थदुःखायासप्रहीण-ममृतं यद्विभाति विशेषेण स्वात्मन्येव भाति सर्वदा।। ७।। धीर अर्थात् विवेकी पुरुष शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे प्राप्त तथा शम, दम, ध्यान, सर्वत्याग एवं वैराग्यसे उत्पन्न हुए विशेष ज्ञानद्वारा आनन्द-रूप समस्त अनर्थ, दुःख और आयाससे रहित सुखस्वरूप एवं अमृतमय जो प्रकाशित हो रहा है विशेष रूपसे जो अन्तःकरणमें

प्रकाशित हो रहा है उस आत्मत्त्वको सर्वत्र परिपूर्ण रूपसे देखते हैं यानी अनुभव करते हैं।। ७।।

अस्य परमात्मज्ञानस्य फलमिदमभिधीयते– इस परमात्मज्ञानका यह फल कहा जाता है– **अस्य परमात्मज्ञानस्येति– जीवन्मुक्तिफलस्याद्वैत–वाक्यार्थवगमस्य क्रममुक्तिफलस्य चोपासनस्येत्यर्थः।** इस परमात्मज्ञानका अर्थात् वाक्यार्थज्ञानका यानी क्रममुक्तिफलवाला उपासनाका।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।। ८।।

तस्मिन् परावरे दृष्टे (सति) हृदयग्रन्थिः भिद्यते सर्वसंशयाः छिद्यन्ते च अस्य कर्माणि क्षीयन्ते– पर और अवर रूप उस परावर ब्रह्मके साक्षात्कार कर लेनेपर इस जीवकी हृदयग्रन्थि टूट जाती है। समस्त संशय नष्ट हो जाते हैं और इसके कर्म क्षीण हो जाते है।। ८।।

भिद्यते हृदयग्रन्थिरविद्यावासनाप्रचयो बुद्ध्याश्रयः कामः 'कामा येऽस्य हृदि श्रिताः' (कठ.२.३.१४) (बृ.४.४.७) इति श्रुत्यन्तरात्। हृदयाश्रयोऽसौ नात्माश्रयः भिद्यते भेदं विनाशमायाति। 'हृदयमें आश्रित ये कामनाएँ' इस अन्यश्रुतिसे बुद्धिमें आश्रित अविद्यासे होनेवाले वासनाओंका समूह कामनारूप हृदयकी ग्रन्थिका भेदन होता है अर्थात् नाश हो जाता है। ये कामनायें हृदयमें आश्रित है न कि आत्मामें आश्रित हैं। **छिद्यन्ते सर्वज्ञेयविषयाः संशया लौकिनामामर–णात्तु गंगास्रोतोवत्प्रवृत्ताविच्छेदमायान्ति।** तथा मरणपर्यन्त गंगाप्रवाह सदृश प्रवृत्त होनेवाले लौकिक पुरुषोंके ज्ञेय पदार्थ विषयक सारे संशय विच्छेदको प्राप्त होते हैं अर्थात् मिट जाते हैं। **अस्य विच्छि–न्नसंशयस्य निवृत्ताविद्यस्य यानि विज्ञानोत्पत्तेः प्राक्तनानि जन्मान्तरे चाप्रवृत्तफलानि ज्ञानोत्पत्तिसहभावीनि च क्षीयन्ते कर्माणि। न त्वेतज्ज–न्मारम्भकाणि प्रवृत्तफलत्वात्।** जिसके संशय मिट गये हैं और

जिसकी अविद्या निवृत्त हो चुकी है ऐसे इस पुरुषके कर्म, जो ज्ञान-उत्पत्तिसे पूर्व जन्मान्तरमें किये गये हैं जो फलोन्मुख नहीं हुए हैं अर्थात् संचितकर्म, और जो ज्ञानोत्पत्तिके साथ होनेवाले आगामीकर्म, वे सभी नष्ट हो जाते हैं। किन्तु इस वर्तमान जन्मको आरंभ करनेवाले कर्म (प्रारब्धकर्म) क्षीण नहीं होते, क्योंकि उनका फल देना आरंभ हो गया है। **तस्मिन्सर्वज्ञेऽसंसारिणि परावरे परं च कारणात्मनावरं च कार्यात्मना तस्मिन्परावरे साक्षादहमस्मीति दृष्टे संसारकारणोच्छेदान्मुच्यत इत्यर्थः।। ८।।** उस सर्वज्ञ असंसारी परावर अर्थात् कारणरूपसे पर और कार्यरूपसे अपर ऐसे उस परावरके 'साक्षात् मैं हूँ' इस प्रकार देख लिए जानेपर संसारके कारणका उच्छेद हो जानेसे यह पुरुष मुक्त हो जाता है।। ८।। **अविद्यावासना-प्रचयो भिद्यत इति कोऽर्थः। किं बुद्धौ विद्यमानायामविद्यादिभेदो ज्ञानफलं किंवा तन्निवृत्तौ।** अविद्यासे होनेवाले वासनाओंके समूहका नाश होता है, इसका क्या अर्थ है? क्या बुद्धिके होते हुए अविद्या आदि भेद (नाश) उपासनाका फल होता है अथवा बुद्धिकी निवृत्ति हानेपर? **नाऽऽद्यः। सत्युपादाने कार्यस्यात्यन्तोच्छेदा-सम्भवात्।** पहला पक्ष ठीक नहीं है। क्योंकि उपादानके रहते हुए कार्यका अत्यन्त उच्छेद संभव नहीं है। **न द्वितीयः। ज्ञानस्याज्ञानेनैव साक्षाद्विरोध प्रसिद्धेः।** दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं। क्योंकि ज्ञानका अज्ञानके साथ साक्षात् विरोध प्रसिद्ध है। अर्थात् ज्ञानसे ही अज्ञान नष्ट हो सकता है बुद्धिकी निवृत्ति मात्रसे नहीं। **किंच बुद्धिरप्यनादिः सादिर्वा। नाद्यः। 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ' इति श्रुतिविरोधात्।** और भी बुद्धि अनादि है या सादि (सकारण) है। पहला पक्ष ठीक नहीं। क्योंकि 'इससे प्राण मन समस्त इन्द्रियाँ उत्पन्न होती है' इस श्रुतिसे विरोध होगा। **नान्त्यः। प्रलये ब्रह्मज्ञानं विनैव बुद्धेर्नाशसम्भवात्तदानर्थक्यप्रसंगात्।** अन्तिम पक्ष भी ठीक नहीं। क्योंकि ब्रह्म-ज्ञानके बिना भी प्रलयमें बुद्धिका नाश संभव है। इससे अनर्थक प्रसंग होगा। (टिप्पणी- प्रलय इति- सादिनां घटादीनां तथादर्शनादिति भावः।) **सादित्वं च बुद्धेरुपादानं साक्षद्ब्रह्म चेत्तन्नाशं विनाऽत्यन्तोच्छेदो न स्यात्।** बुद्धिका सादिपना भी यदि उसका उपादान साक्षात् ब्रह्म है तो उसके नाश के बिना अत्यन्त उच्छेद संभव

नहीं है। **माया चेत्सा द्रष्टुगतज्ञानेन नोच्छेदमर्हति।** मायाको उपादान कारण मानोगे तो द्रष्टाके ज्ञानसे उसका उच्छेद संभव नहीं। **लौकिकमायाविगतमायाया दृष्टृगतज्ञानेनोच्छेदादर्शनात्।** संसारमें देखा गया है कि द्रष्टागत ज्ञानसे मायावी-गत मायाका उच्छेद नहीं होता। **किंच बुद्धेरुच्छेदो न तस्याः फलं स्वनाशस्या-फलत्वात्।** और भी बुद्धिका उच्छेद बुद्धिका फल नहीं हो सकता क्योंकि स्वयं का नाश फल नहीं होता है। **नाऽऽत्मनः। तस्य बुद्धिप्रसंगाभावेन तदुच्छेदस्या-फलत्वात्।** आत्माका भी नहीं है। क्योंकि उसका बुद्धिप्रसंगके अभावसे उसका उच्छेद कोई फल नहीं है। **किंचाऽऽत्मनोऽविद्याद्यनाश्रयत्वाभिधानं श्रुतिविरुद्धं प्रक्रमे- अविद्यायामन्तरे वर्तमाना इति श्रवणादुपसंहारे च 'अनीशया शोचति मुह्यमानः' इति श्रवणात्।** और भी आत्मा अविद्यादिका आश्रय नहीं है, यह कथन श्रुतिसे विरोध होगा। क्योंकि श्रुतिमें कहा है कि 'अविद्यामें रहते हुए' और उपसंहार में 'अनीश्वर बुद्धिसे मोहित होकर शोक करता है'।

बुद्धिगतमेवाविद्याद्यात्मन्यध्यस्यत इति चेदध्यस्यत इति कोऽर्थः। निक्षिप्यते भ्रान्त्या दृश्यते वा। नाऽऽद्यः। अन्यधर्मस्यान्यत्र निक्षेपासम्भवात्। भ्रान्त्या चेत्केन दृश्यते। न तावदात्मना। तस्याविद्याश्रयत्वानंगीकारात्। यदि कहें कि बुद्धिमें स्थित अविद्यादि आत्मामें अध्यस्त किया जाता है? तो अध्यस्त किया जाता है इसका अर्थ क्या है? आत्मामें निक्षेप किया जाता है या आत्मामें भ्रान्तिसे दिखते हैं। पहला पक्ष ठीक नहीं। क्योंकि अन्यके धर्मका अन्यमें निक्षेप संभव नहीं है। यदि कहो कि भ्रान्तिसे दिखते हैं तो किसके द्वारा देखा जाता है। आत्माके द्वारा भ्रान्तिसे दिखते हैं नहीं कह सकते, क्योंकि आत्माको अविद्याका आश्रय आपने स्वीकार नहीं किया है। **न बुद्ध्या। बुद्धेरात्मविषयत्वा-सम्भवेन तद्गगतदर्शनासंभवात्।** आत्मामें भ्रान्तिसे अध्यस्त बुद्धिके द्वारा देखा जाता है यह भी नहीं कह सकते हो। क्योंकि बुद्धि आत्माको विषय नहीं करती तो आत्मगत अध्यासको देखना असंभव है। **तद्भ्रान्तेश्च स्वाश्रयगतेन तत्त्वानु-भवेन निवर्त्यत्वप्रसिद्धेर्बुद्धेरनुभवाश्रयत्वप्रसंगात्।** बुद्धिगत भ्रान्ति अपने आश्रय स्थित तत्त्वके अनुभव द्वारा निवर्त्य इस प्रसिद्धिसे बुद्धि अनुभवका आश्रय है ऐसा प्रसंग होगा। **तस्मान्नास्य भाष्यस्य सम्यगर्थं पश्याम इति चेदुच्यते।** इसलिए इस भाष्यका सही अर्थ नहीं जान पडता है ऐसी शंका है तो कहते हैं- **चित्तन्त्राऽनादिरनिर्वाच्याऽविद्या चैतन्यमवच्छिद्य स्वावच्छिन्नचैतन्यस्य बुद्ध्यादि-तादात्म्यरूपेण विवर्तते।** चैतन्यको आश्रय और विषय करनेवाली अनिर्वाच्य

अविद्या चैतन्यको अवच्छेद करके अपने अवच्छिन्न चैतन्यका बुद्धि आदि तादात्म्य रूपसे विवर्त (परिणत) होता है। (टिप्पणी- अनादि कह कर अविद्याका अत्यन्त उच्छेद का निराकरण करते हैं। अनादि होते हुए भी ब्रह्मके समान अबाधित नहीं किन्तु ज्ञानसे बाधित होती है।) **तस्याश्च ब्रह्मात्मतासाक्षत्कारनिवर्त्यरूपांगीकारात्तन्नि-वृत्तौ तदुत्थहृदयग्रन्थिभेदः श्रुत्योच्यते।** अविद्या ब्रह्मात्म-साक्षात्कारसे निवर्त्य है यह अंगीकार किया गया है। तो अविद्याकी निवृत्ति होनेसे उससे उत्पन्न हृदय-ग्रन्थिका भेदन होता है, यह श्रुतिके द्वारा कहा जाता है। **भाष्यकारीयं च बुद्ध्याश्रयत्वाभिधानमहंकारविशेषणत्वेनाविद्यादेर्व्यावहारिकाभिप्रायेणाऽऽत्मानाश्रयत्वा-भिधानं चाऽऽत्मनो निर्विकारत्वाभिप्रायम्।** भाष्यकारने जो बुद्धि-आश्रयत्व कहा है वह अहंकारके विशेषणरूपसे अविद्यादि का व्यावहारिक अभिप्रायसे कहा है। तथा आत्माके अनाश्रय कहना भी आत्मा निर्विकार है इस अभिप्रायसे। **बाधितानुवृत्तिश्च प्रकटार्थे प्रादर्शीति जीवन्मुक्तिर्न विरुध्यते।। ८।।** अविद्याका बाध हो जानेपर भी बाधित अनुवृतिसे व्यवहार संभव है इस बातको प्रकटार्थ नामक ग्रन्थमें हमने दिखाया है। इससे जीवन्मुक्तिका कोई विरोध नहीं है।। ८।।

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
यच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः।। ६।।

हिरण्मये परे कोशे विरजं निष्कलं ब्रह्म- बुद्धिवृत्तिके प्रकाश-रूप परम कोशमें अविद्यादि मलसे रहित कलाहीन ब्रह्म विद्यमान है। **यत् शुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः-** जो शुद्ध ज्योतियोंकी भी ज्योति है। **तत् यत् आत्मविदः विदुः-** वह यही है जिसे आत्मज्ञानी अनुभव करते हैं।। ६।।

हिरण्मये ज्योतिर्मये बुद्धिविज्ञानप्रकाशे परे कोशे कोश इवासेः आत्मस्वरूपोलब्धिस्थानत्वात् परं तत्सर्वाभ्यन्तरत्वात् तस्मिन्विरजमवि-द्याद्यशेषदोषरजोमलवर्जितं ब्रह्म सर्वमहत्त्वात्सर्वात्मत्वाच्च। हिरण्मय अर्थात् ज्योतिर्मय बुद्धिवृत्तिके प्रकाशरूप परम कोशके समान कोशमें अविद्यादिदोषरूप रज अर्थात् मलसे रहित होनेसे विरज और सबकी अभ्यन्तर होनेसे 'पर' तथा सबसे महान् होनेसे और सबकी आत्मा होनेसे 'ब्रह्म' परब्रह्म रहता है। बुद्धिवृत्ति आत्मस्वरूपकी उपलब्धिका

साधन होनेसे उसे कोश कहा गया है। **निष्कलं निर्गताः कला यस्मात्तन्निष्कलं निरवयवमित्यर्थः।** जिससे सारी कलाएँ निकलगयी है उसे निष्कल कहते हैं। वह ब्रह्म निष्कल अर्थात् अवयव रहित है। **यस्माद्विरजं निष्कलं चातस्तच्छुभ्रं शुद्धं ज्योतिषां सर्वप्रकाशात्मनामग्न्यादीनामपि तज्ज्योतिरवभासकम्।** क्योंकि वह विरज और निष्कल हे इसलिए वह शुभ्र यानी शुद्ध है। वह अग्नि आदि समस्त ज्योतियोंका यानी प्रकाशमय पदार्थोंका भी ज्योति है यानी अवभासक है। **अग्न्यादीनामपि ज्योतिष्ट्वमन्तर्गतब्रह्मात्मचैतन्यज्योतिर्निमित्तमित्यर्थः।** तात्पर्य यह है कि अग्नि आदिका ज्योतिवाला होना उनके अन्तर्गत ब्रह्मात्मचैतन्य ज्योतिके निमित्त है। **तद्धि परं ज्योतिर्यदन्यानवभाष्यमात्मज्योतिस्तद्यदात्मविद आत्मानं स्वं शब्दादिविषयबुद्धिप्रत्ययसाक्षिणं ये विवेकिनो विदुर्विजानन्ति त आत्मविदस्तद्विदुरात्मप्रत्यानुसारिणः।** जो किसी अन्यसे प्रकाशित न होनेवाला आत्मज्योति है वही परज्योति है। जो विवेकी शब्दादिविषयोंके बौद्धिक ज्ञानके साक्षी अपनी आत्मा को जानते हैं वे आत्मवित् हैं। आत्मप्रत्यके अनुसरण करनेवाले वे आत्मज्ञानी उसे जानते हैं। **यस्मात्परं ज्योतिस्तस्मात्ते एव तद्विदुर्नेतरे बाह्यार्थप्रत्ययानुसारिणः।** क्योंकि वह परम ज्योति है, इसलिए उसे वे ही जानतें हैं, दूसरे बाह्य प्रत्ययोंके अनुसरण करनेवाले नहीं जानते हैं।। ९।।

कथं तज्ज्योतिषां ज्योतिरित्युच्यते– वह ज्योतियोंका ज्योति किस प्रकारका है, उसे कहते हैं–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।। १०।।

तत्र सूर्यः न भाति न चन्द्रतारकं न इमा विद्युतः भान्ति अयं अग्निः कुतः– वहाँ ब्रह्ममें सूर्य प्रकाशित नहीं होता है। न चन्द्रमा और तारे प्रकाशित होते हैं। यह बिजली भी नहीं चमकती है फिर यह अग्नि किस गिनतीमें है? **तं एव भान्तं सर्वं अनुभाति–** उसके प्रकाशित होनेपर ही सब प्रकाशित होता है। **तस्य भासा इदं सर्वं विभाति–** उसकी प्रकाशसे यह सब कुछ प्रकाशमान है।। १०।।

न तत्र तस्मिन्स्वात्मभूते ब्रह्मणि सर्वावभासकोऽपि सूर्यो भाति। तद्ब्रह्म न प्रकाशयति इत्यर्थः। वहाँ यानी उस आत्मस्वरूप ब्रह्ममें सबको प्रकाशित करनेवाला सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता अर्थात् सूर्य भी उस ब्रह्मको प्रकाशित नहीं करता। **भातीति णिजर्थाध्याहारेण व्याख्यातम्।** भाति इसका णिच् अर्थका अध्याहार करके व्याख्या की गयी है। अर्थात् भातिके स्थान पर भासयतिका अध्याहार करके उसका अर्थ प्रकाशयति किया है। **स हि तस्यैव भासा सर्वमन्यदनात्मजातं प्रकाशयति इत्यर्थः। न तु तस्य स्वतः प्रकाशनसामर्थ्यम्।** अर्थात् वह सूर्य तो उस ब्रह्मके प्रकाशसे ही अन्य सब अनात्मदार्थोको प्रकाशित करता है। उसमें स्वतः प्रकाश करनेका सामर्थ्य नहीं है। **तथा न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निरस्मद्गोचरः।** इसी प्रकार उसे न तो चन्द्रमा या तारे या यह बिजली ही प्रकाशित करते हैं, तो हमारे प्रत्यक्ष विषय अग्नि उसे कैसे प्रकाशित कर सकती है। **किं बहुना यदिदं जगद्भाति तत्तमेव परमेश्वरं स्वतो भारूपत्वाद्भान्तं दीप्यमानमनुभात्यनुदीप्यते। यथा जलोल्मुकाद्यग्निसंयोगादग्निं दहन्तमनुदहति न स्वतस्तद्वत्तस्यैव भासा दीप्त्या सर्वमिदं सूर्यादि जगद्विभाति।** बहुत कहनेसे क्या? जो यह जगत् प्रकाशित होता है वह उस स्वतः प्रकाशरूप परमेश्वरके प्रकाशित होनेके बाद उससे प्रकाशित होता है। जैसे अग्निके संयोगसे जल, अंगारे आदि अग्नि के दहनके बाद दहन करते हैं किन्तु स्वतः दहन नहीं करते, वैसे

उस परमेश्वरकी दीप्तिसे समस्त सूर्यादि जगत् दीप्तिमान् होते हैं। **तस्य भासा सर्वमिदं विभातीत्यस्य ब्रह्मणः स्वतो भारूपत्वे तात्पर्यं कथयति- यत एवं तदेव ब्रह्म भाति चेति।। १०।।** उस ब्रह्मके प्रकाशसे यह सब कुछ प्रकाशित होता है, इससे इस ब्रह्मका स्वतः प्रकाशरूपतामें तात्पर्य कहते हैं- **यत एवं तदेव ब्रह्म भाति च विभाति च कार्यगतेन विविधेन भासातस्तस्य ब्रह्मणो भारूपत्वं स्वतोऽवगम्यते।** क्योंकि ऐसी बात है, इसलिए वह ब्रह्म स्वयं भाति-प्रकाशित होता है और विभाति- कार्यगत विविध प्रकाश से विशेषरूपसे प्रकाशित होता है। इससे उस ब्रह्मकी प्रकाश-रूपता स्वतः जाना जाता है। **न हि स्वतोऽविद्यमानं भासनमन्यस्य कर्तुं शक्नोति। घटादीनामन्यावभासकत्वादर्शनाद्भारूपाणां चादित्यादीनां तद्दर्शनात्।।** जिसमें स्वयं प्रकाश नहीं है वह दूसरेको प्रकाशित नही कर सकता, क्योंकि घटादियोंका दूसरोंको प्रकाशित करते हुए नहीं देखा गया है और प्रकाशरूप आदित्यादिमें वह देखा गया है।।१०।।

उपसंहारमन्त्रस्य तात्पर्यमाह- यत्तज्ज्योतिषां ज्योतिरिति। उपसंहारमंत्रका तात्पर्य कहते हैं- **यत्तज्ज्योतिषां ज्योतिर्ब्रह्म तदेव सत्यं सर्वं तद्विकारं वाचारम्भणं विकारो नामधेयमात्रमनृतमितरदित्येतमर्थं विस्तरेण हेतुतः प्रतिपादितं निगमनस्थानीयेन मन्त्रेण पुनरुपसंहरति-** जो ब्रह्म ज्योति-योंका ज्योति है, वही सत्य है तथा उसीका विकार इतर सब कुछ मिथ्या है यह बात श्रुतिद्वारा कही गयी है कि 'विकार वाणीका आरंभ मात्र, नाममात्र, अनृत है'। इस बातको विस्तारसे हेतुपूर्वक प्रतिपादित किया गया है। अब निगमन(उपसंहार) स्थानीय मंत्रसे पुनः प्रकरणका उपसंहार करते हैं-

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्-
ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं
ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।। ११।।

इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः।। २।।

इति द्वितीयमुण्डकं समाप्तम्।। २।।

इदं अमृतं ब्रह्म एव पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतः उत्तरेण अधः ऊर्ध्वं च प्रसृतम्– यह अमृत ब्रह्म ही सबके आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायें और वायें और नीचे ऊपर फैला हुआ है। **इदं ब्रह्म वरिष्ठं एव इदं विश्वम्–** अधिक क्या कहे यह संपूर्ण विश्व सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।। ११।।

ब्रह्मैवोक्तलक्षणमिदं यत्पुरस्तादग्रे ब्रह्मैवाविद्यादृष्टीनां प्रत्यवभा–समानं तथा पश्चाब्रह्म तथा दक्षिणतश्च तथोत्तरेण तथैवाधस्तादूर्ध्वं च सर्वतोऽन्यदिव कार्याकारेण प्रसृतं प्रगतं नामरूपवद् अवभासमनम्। जिसका लक्षण पहले बतलाया गया है वही ब्रह्म अविद्यादृष्टिवालोंको प्रतिभासित होता हुआ दूसरा जैसा कार्यरूपसे फैला हुआ नामरूप–वाला भासित होता हुआ आगे दीखता है, पीछे दीखता है, दायीं ओर और वायीं ओर दीखता है, तथा ऊपर नीचे चारों ओर दीखता है। **किं बहुना ब्रह्मैव इदं विश्वं समस्तमिदं जगद्वरिष्ठं वर–तमम्।** अधिक क्या? यह विश्व अर्थात् सारा जगत् श्रेष्ठतम ब्रह्म ही है। **अब्रह्मप्रत्ययः सर्वोऽविद्यामात्रो रज्ज्वामिव सर्पप्रत्ययः। ब्रह्मैवैकं परमार्थसत्यमिति वेदानुशासनम्।। ११।।** रस्सीमें साँपकी प्रतीतिके समान ब्रह्मभिन्न प्रतीति अविद्यामात्र है। एक ब्रह्म ही परमार्थ सत्य है, यह वेदका उपदेश है।। ११।।

इत्यर्थर्ववेदीयमुण्डकोपनिषद्भाष्ये द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः।। २।।

इति मुण्डकोपनिषद्भाष्ये द्वितीयमुण्डकं समाप्तम्।। २।।

तेन ब्रह्मणा विविधं क्रियत इति तद्विकारं सर्वं जगत्सर्वं ब्रह्मैवेति बाधायां सामानाधिकरण्यं योऽयं स्थाणुः पुमानसावितिवदन्वययव्यतिरेकाभाव–परिहारेण तावन्मात्रत्वं बोध्यते।। ११।। उस ब्रह्मके द्वारा विविध किया जाता है इस प्रकार सारा जगत् उसका विकार है। 'सर्वं ब्रह्मैव' यहाँ बाधामें सामाना–धिकरण्य है जैसे 'जो यह स्थाणु है वह पुरुष है'के समान। अन्वयरूप जो

व्यतिरेकाभाव है उसके परिहारसे उतने मात्रका बोध होता है। अर्थात् ब्रह्ममें जो जगत्-तादात्म्यरूप अन्वय है उसका ब्रह्मव्यतिरेकसे अभाव होनेसे सब कुछ ब्रह्म ही है इस प्रकार सामान्याधिकरण होता है।। ११।।

इत्यथर्ववेदीयमुण्डकोपनिषद्भाष्यटीकायां द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः।। २।।

(तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः)

परा विद्योक्ता यया तदक्षरं पुरुषाख्यं सत्यमधिगम्यते। जिससे उस पुरुषसंज्ञक उस सत्य अक्षरका ज्ञान होता है उस परा विद्याका वर्णन किया गया। **यदधिगमे हृदयग्रन्थ्यादिसंसारकारणस्यात्यन्तिक-विनाशः स्यात्।** जिस अक्षरके ज्ञानसे संसारके कारण हृदयग्रन्थि आदिका आत्यन्तिक नाश हो जाता है। **तद्दर्शनोपायश्च योगो धनुरा-द्युपादानकल्पनयोक्तः।** धनु आदिका ग्रहणरूप कल्पनासे उसके साक्षा-त्कारके उपाय योग कहा गया। **अथेदानीं तत्सहकारीणि सत्यादिसाध-नानि वक्तव्यानीति तदर्थमुत्तरारम्भः।** अनन्तर अब उसके सहकारी सत्यादि साधनोंका वर्णन करना है; इसीके लिए आगेका ग्रन्थ आरंभ किया जाता है। **प्राधान्येन तत्त्वनिर्धारणं च प्रकारान्तरेण क्रियते अत्यन्तदुरवगाह्यत्वात्कृतमपि।** तथा यद्यपि तत्त्वका निश्चय किया गया है फिर भी प्रधानतासे अन्य प्रकारसे तत्त्वका भी निर्धारण किया जाता है, क्योंकि आत्मतत्त्व अत्यन्त दुर्बोध है। **प्राधान्येनेति- अपूर्वत्वेन तात्पर्यविषयतयेत्यर्थः।** प्रधानतासे अर्थात् तात्पर्यविषयरूपसे विलक्षणरूपसे तत्त्वका निर्धारण। **तत्र सूत्रभूतो मन्त्रः परमार्थवस्त्ववधारणार्थमुपन्यस्यते-** इस तृतीय मुंडकमें पहले परमार्थवस्तुको समझनेके लिए सूत्ररूप मंत्रका उपन्यास करते हैं-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।। १।।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया- साथ साथ रहनेवाले समान नामवाले दो पक्षी जीव और ईश्वर **समानं वृक्षं परिषस्वजाते-** एक ही शरीरवृक्षका आश्रय करके रहते हैं। **तयोः अन्यः स्वादु पिप्पलं अत्ति-** उनमें से एक जीव मीठे कडवे कर्मफलका भोग करता है। **अन्यः अनश्नन् अभिचाकशीति-** दूसरा ईश्वर भोग न करता हुआ केवल साक्षीभावसे देखता रहता है।। १।।

द्वा द्वौ सुपर्णा सुपर्णौ शोभनपतनौ सुपर्णौ पक्षिसामान्याद्वा सुपर्णौ सयुजा सयुजौ सहैव सर्वदा युक्तौ सखाया सखायौ समाना- ख्यानौ समानाभिव्यक्तिकारणावेवंभूतौ सन्तौ समानमविशेषमुपलब्ध्यधि- ष्ठानतयैकं वृक्षं वृक्षमिवोच्छेदनसामान्याच्छरीरं वृक्षं परिषस्वजाते परि- ष्वक्तवन्तौ सुपर्णाविवैकं वृक्षं फलोपभोगार्थम्। शोभन-उचित है पतन अर्थात् नियम-नियामकभाव गमन जिनका या पक्षिके साथ समानता होनेसे दो सुपर्ण सयुज अर्थात् सदा युक्त हैं। सखा हैं अर्थात् दोनों की आख्या अर्थात् अभिव्यक्तिके कारण, समान है। इस प्रकारके होते हुए समान अर्थात् सामान्यउपलब्धिका अधिष्ठानरूपसे एक वृक्षको अर्थात् वृक्षके समान उच्छेद समानतासे शरीररूप वृक्षको आश्रित करके पक्षीयोंके समान फलके उपभोगके लिए रहते हैं। **द्वा सुपर्णेत्यादौ द्विवचनस्याऽऽकारश्छान्दसः।** मूलमें द्वौ आदिके स्थानपर द्वा सुपर्णा आदि द्विवचनका आकार छान्दस प्रयोग है। **जीवस्याज्ञत्वेन नियम्यत्वेन योग्यत्वा- दीश्वरस्य नियामकत्वशक्तियोगाच्छोभनमुचितं पतनं नियम्यनियामकभावगमनं ययोस्तौ शोभनपतनौ।** अज्ञानताके कारण जीव नियम्य योग्य होनेसे तथा नियामक-शक्तिके योगसे ईश्वरका; शोभन अर्थात् उचित पतन अर्थात् नियम्य- नियामकभाव की प्राप्ति है जिनका वे शोभन पतनवाले हैं। **पक्षिसामान्यादिति- वृक्षाश्रयणादिश्रवणादित्यर्थः।** पक्षिके साथ समानता अर्थात् शरीरवृक्षका आश्रयण आदि श्रवणसे समानता है। **अयं हि वृक्ष ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखोऽश्वत्थो-**

ऽव्यक्तमूलप्रभवः क्षेत्रसंज्ञकः सर्वप्राणिकर्मफलाश्रयस्तं परिष्वक्तौ सुप-र्णाविवाविद्याकामकर्मवासनाश्रयलिङ्गोपाध्यात्मेश्वरौ। । ऊपरकी ओर जड़वाला अर्थात् अव्यक्तरूप मूलसे उत्पन्न तथा नीचेकी ओर शाखावाला यह क्षेत्र नामवाला अश्वत्थ वृक्ष सब प्राणियोंके कर्मफल का आश्रय है। उस वृक्षको अविद्या-काम-कर्म-वासनाके आश्रय लिंग-उपाधिजीव-ईश्वर पक्षी जैसे परिष्वक्त (आलिंगित) हैं (वृक्षमें आवद्ध हैं या वृक्षको आश्रित करके रहते हैं)। **ऊर्ध्वमुत्कृष्टं ब्रह्म मूल-मधिष्ठानरमस्येत्यूर्ध्वमूलोऽवाञ्चः प्राणादयः शाखा इवास्येत्यवाक्शाखः।** ऊर्ध्व यानी उत्कृष्ट ब्रह्म है अधिष्ठान इस संसार वृक्षका इससे ऊर्ध्वमूल है। नीचे की ओर शाखाके समान शाखा प्राण आदि है जिसका वह अवाक्शाख है। **श्वः स्थानं नियन्तुमस्य न शक्यमित्यश्वत्थः।** कल इसका अवस्थान नियत करना अशक्य है, इससे अश्वत्थ है। **अव्यक्तमव्याकृतं मूलमुपादानमन्वयि तस्मात्प्रभव-तीति तथोक्तो यावदज्ञानभावीत्यर्थः।** अव्यक्त यानी अव्याकृत है मूल यानी उपादानसे अन्वित, उससे उत्पन्न होता है, इसीसे अव्यक्तमूल कहा गया है। अर्थात् जबतक अज्ञान है तबतक यह वृक्ष है। **अविद्याकामकर्मवासनाश्रयो लिंगमुपाधिर्यस्याऽऽत्मनः स जीवस्तथोक्तः स चेश्वरश्च तावित्यर्थः।** सूक्ष्मशरीर है उपाधि जिस आत्माकी वह अविद्याकामकर्मवासनाका आश्रय जीव। वैसा कहा गया जीव और ईश्वर दोनों। **तयोः परिष्वक्तयोरन्य एकः क्षेत्रज्ञो लिङ्गोपाधिवृक्षमाश्रितः पिप्पलं कर्मनिष्पन्नं सुखदुःखलक्षणं फलं स्वाद्वनेकविचित्रवेदनास्वादरूपं स्वाद्वत्ति भक्षयत्युपभुङ्क्तेऽविवेकतः।** इस प्रकार परिष्वक्त उन दोनोंमेंसे एक लिंगोपाधिरूप वृक्षको (सूक्ष्म-शरीरको) आश्रित क्षेत्रज्ञ (जीव) पिप्पल यानी अपने कर्मसे निष्पन्न, स्वादु अर्थात् जो अनेक प्रकारसे विचित्र अनुभवरूप स्वादके कारण स्वादु है, ऐसे सुखदुःखरूप फल खाता है यानी भक्षण करता है यानि अविवेकके कारण भोगता है। **अनश्नन्नन्य इतर ईश्वरो नित्य-शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सर्वज्ञः सर्वसत्त्वोपाधिरीश्वरो नाश्नाति।** न खाता हुआ अन्य यानी दूसरा, जो नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववाला सर्वज्ञ

मायोपाधिक ईश्वर नहीं खाता (भोगता) है। **सत्त्वं मायाख्यमुपाधिरस्येति सत्त्वोपाधिः।** सत्त्व यानी माया नामवाली उपाधि है इसका, इस प्रकार सत्त्वोपाधि। **ज्ञानात्मकस्यामलसत्त्वराशेरिति ह्युक्तम्।। १।।** ज्ञानास्वरूप अमल-सत्त्वराशिका इस प्रकार अन्यत्र कहा गया है। (अमलसत्त्व यानी शुद्धसत्त्वप्रधानमाया-तत्त्वं वह है राशिरूप उपाधि जिसका इस प्रकार विग्रह है) **प्रेरयिता ह्यसावुभयोर्भोज्य-भोक्त्रोर्नित्यसाक्षित्वसत्तामात्रेण स त्वनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति पश्यत्येव केवलम्। दर्शनमात्रं हि तस्य प्रेरयितृत्वं (न) राजवत्।। १।।** यह नित्य साक्षीरूप सत्तामात्रसे दोनों भोज्य और भोक्ताका प्रेरक ही है। किन्तु वह अन्य ईश्वर न खाते हुए केवल देखता ही है। दर्शनमात्र ही उसका प्रेरकत्व है, राजाके समान साक्षात् नहीं है।। १।।

तत्रैवं सति- उन दोनों जीव और ईश्वर में इस प्रकार होने पर अर्थात् एक भोक्ता और दूसरा द्रष्टा होने पर-

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-
ऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य
महिमानमिति वीतशोकः।। २।।

समाने वृक्षे पुरुषः निमग्नः- एक ही शरीररूप वृक्षमें आश्रित जीव और ईश्वरके मध्यमें पुरुष अर्थात् जीव संसार समुद्रमें डूबा है अर्थात् देहात्मभावको प्राप्त हुआ है। **अनीशया मुह्यमानः शोचति-** असामर्थ्यबुद्धि यानी दीनतासे मोहित होकर शोक करता है। **यदा जुष्टं अन्यं ईशं पश्यति-** जब किसी कारुणिक गुरु द्वारा उपदिष्ट योगमार्गका (जुष्टं) सेवन करता है, तब वह अन्य ईश्वरको देखता है। **अस्य महिमानं इति वीतशोकः (भवति)-** यह सब संसार उस ईश्वरकी महिमा है, इस प्रकार जानकर शोक रहित हो जाता है।। २।।

समाने वृक्षे यथोक्ते शरीरे पुरुषो भोक्ता जीवोऽविद्याकाम-कर्मफलरागादिगुरुभाराक्रान्तोऽलावुरिव सामुद्रे जले निमग्नो निश्चयेन देहात्मभावमापन्नोऽयमेवाहममुष्य पुत्रोऽस्य नप्ता कृशः स्थूलो गुणवान्निर्गुणः सुखी दुःखीत्त्येवंप्रत्ययो नास्त्यन्योऽस्मादिति जायते म्रियते संयुज्यते वियुज्यते च सम्बन्धिबान्धवैः। एक ही वृक्षपर यानी पूर्वोक्त शरीरमें पुरुष यानी यह भोक्ता जीव अविद्या, कामना, कर्मफलमें आसक्ति आदि अधिक भारसे आक्रान्त समुद्रके जलमें तूँबेके समान संसार समुद्रमें डूबा है अर्थात् देहमें आत्मभावको प्राप्त हुआ है। (किस प्रकार डूबा हुआ है इसे भाष्यकार कहते हैं-) मैं शरीरमात्र ही हूँ, अमुकका पुत्र हूँ, इसका नाती हूँ, पतला हूँ, मोटा हूँ, गुणवान् हूँ, या गुणहीन हूँ, सुखी हूँ, दुःखी हूँ; इस प्रकार ऐसे समझवाला तथा इससे अतिरिक्त और कुछ नहीं है ऐसा समझनेके कारण वह उत्पन्न होता और मरता है, संबन्धियोंसे मिलता और विछुड़ता रहता है। **अतोऽनीशया न कस्यचित् समर्थोऽहं पुत्रो मम विनष्टो मृता मे भार्या किं मे जीवितेनेत्येवं दीनभावोऽनीशा तया शोचति सन्तप्यते मुह्यमानोऽनेकैरनर्थप्रकारैरविवेकतया चिन्तामापद्यमानः।** अतः अनीशाके कारण यानी मैं किसी कार्यके लिए समर्थ नहीं हूँ, मेरा पुत्र नष्ट हो गया है और स्त्री भी मर गयी है, अब मेरे जीवित रहनेसे क्या लाभ है? इस प्रकारके दीनभाव को अनीशा कहते हैं। उस अनीशासे मोहित होकर यानी अनेकों अनर्थ-भेद से अविवेकवश चिन्ताको प्राप्त हुआ शोक यानी सन्ताप करता है।

आवरणं विक्षेपश्च द्वयमविद्यायाः कार्यम्। तत्रेश्वरभावाप्रतिपत्तिरनीशाऽऽवरणं शोचतीति विक्षेपः। तदुभयहेतुरनिर्वाच्यमज्ञानं मोहः। तेन विशिष्टोऽनेकैरनर्थप्रकारैरहं करोमीत्यादिभिरविवेकतया तादात्म्यापन्नतयेत्यर्थः। आवरण और विक्षेप ये दोनों अविद्याके कार्य हैं। उनमेंसे ईश्वरभावका अज्ञान अनीशा आवरण है। तथा शोक विक्षेप है। उन दोनोंका हेतु अनिर्वाच्य अज्ञान मोह है। उस मोहसे

युक्त अनेक अनर्थ-भेदसे मैं करता हूँ इत्यादिसे अविवेकके कारण तादात्म्यको प्राप्त, यह अर्थ है।

स एवं प्रेततिर्यङ्मनुष्यादियोनिष्वाजवं जवीभावमापन्नः कदाचिदनेकजन्मसु शुद्धधर्मसञ्चितनिमित्ततः केनचित्परमकारुणिकेन दर्शितयोगमार्गोऽहिंसासत्यब्रह्मचर्यसर्वत्यागशमदमादिसम्पन्नः समाहितात्मा सञ्जुष्टं सेवितमनेकैर्योगमार्गैः कर्मभिश्च यदा यस्मिन्काले पश्यति ध्यायमानोऽन्यं वृक्षोपाधिलक्षणाद्विलक्षणमीशमसंसारिणमशनायापिपासाशोकमोहजरामृत्यवतीतमीशं सर्वस्य जगतोऽयमहमस्म्यात्मा सर्वस्य समः सर्वभूतस्थो नेतरोऽविद्याजनितोपाधिपरिच्छिन्नो मायात्मेति विभूतिं महिमानं च जगद्रूपमस्यैव मम परमेश्वरस्येति यदैवं द्रष्टा तदा वीतशोको भवति सर्वस्माच्छोकासागाद्विप्रमुच्यते कृतकृत्यो भवतीत्यर्थः।। २।। इस प्रकार प्रेत, तिर्यक्, मनुष्य आदि योनियोंमें निरन्तर लघुभावको प्राप्त हुआ वह जिस समय अनेकों जन्मोंमें शुद्ध धर्मके संचयके कारण किसी परम कारुणिक गुरुके द्वारा योगमार्ग दिखलाये जानेपर अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, सर्वत्याग और शम-दमादि से संपन्न तथा समाहितचित्त होकर अनेक योगमार्ग और कर्मोंका सेवन यानी आचरण करने पर ध्यान करता हुआ जिस समय वृक्ष-रूप उपाधिलक्षणसे विलक्षण ईश्वरको यानी असंसारी, भूख-प्यास, शोक, मोह और जरा-मृत्यु आदिसे अतीत सारे संसारके मालिकको 'यह सबकी आत्मा, सम, समस्तप्राणियोंमें स्थित ईश्वर मैं ही हूँ, अविद्याजनित उपाधिसे परिच्छिन्न दूसरा जीव नहीं हूँ' इस प्रकार जब देखता है, तथा 'मुझ परमेश्वरका यह जगत्‌रूप महिमा यानी विभूति है' इस प्रकार जब जानता है उस समय वह शोकरहित हो जाता है। समस्त शोकसागरसे मुक्त हो जाता है यानी कृतकृत्य हो जाता है।। २।। **आजवमनवरतं जवीभावं निकृष्टभावं लक्षणया लघुभावं कर्मवायुप्रेरिततया जवीभावं क्षैप्र्यमापन्नः। पूर्ववदित्यभेदेनेत्यर्थः।। २।।** आजवं अर्थात्

अनवरत, जवीभाव अर्थात् निकृष्टभाव, लक्षणासे लघुभाव। कर्मवायुसे प्रेरित हो कर शीघ्रतासे निकृष्टताको प्राप्त। पूर्ववत् अर्थात् अभेदसे।। २।।

अन्योऽपि मन्त्र इममेवार्थमाह सविस्तरम्– दूसरा मन्त्र भी इसी बातको विस्तारपूर्वक बतलाता है–

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।। ३।।

यदा पश्यः रुक्मवर्णं ब्रह्मयोनिं कर्तारं ईशं पुरुषं पश्यते– जिस समय द्रष्टा सुवर्णवर्ण, ब्रह्माके कारण, जगत्कर्ता, ईश्वर, पुरुषको देखता (अभिन्नतासे जानता) है, **तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः (सन्) परमं साम्यं उपैति–** उस समय वह विद्वान् पाप–पुण्योंको त्यागकर निर्मल हो अत्यन्त समताको प्राप्त हो जाता है।। ३।।

यदा यस्मिन्काले पश्यः पश्यतीति विद्वान्साधक इत्यर्थः। पश्यते पश्यति पूर्ववद्रुक्मवर्णं स्वयंज्योतिःस्वभावं रुक्मस्येव वा ज्योतिरस्यसविनाशि कर्तारं सर्वस्य जगत ईशं पुरुषं ब्रह्मयोनिं ब्रह्म च तद्योनिश्चासौ ब्रह्मयोनिस्तं ब्रह्मयोनिं ब्रह्मणो वापरस्य योनिं स यदा चैवं पश्यति तदा स विद्वान्पश्यः पुण्यपापे बन्धनभूते कर्मणी समूले विधूय निरस्य दग्ध्वा निरञ्जनो निर्लेपो विगतक्लेशः परमं प्रकृष्टं निरतिशयं साम्यं समतामद्वयलक्षणं द्वैतविषयाणि साम्यान्यतोऽर्वाञ्च्ये–वातोऽद्वयलक्षणमेतत्परमं साम्यमुपैति प्रतिपद्यते।। ३।। जब जिस समय देखनेवाला होनेसे पश्य (द्रष्टा) अर्थात् विद्वान् साधक, पूर्वके समान रुक्मवर्ण यानी स्वयंज्योतिस्वभाव अथवा सोनेके समान ज्योतिवाले अविनाशि समस्त जगत्के कर्ता ईश्वर पुरुष ब्रह्मयोनिको देखता है, जो ब्रह्म है और योनि–कारण है वह ब्रह्मयोनि है अथवा

अपरब्रह्मके कारण होनेसे ब्रह्मयोनि है। उस ब्रह्मयोनिको देखता है; उस समय वह पश्यः यानी विद्वान् पुण्य-पाप यानी अपने बन्धनरूप कर्मोको जड़ सहित नष्ट कर यानी भस्म करके, निरंजन यानी निर्लेप होकर यानी क्लेशोंसे रहित होकर परम यानी उत्कृष्ट निरतिशय अद्वयलक्षण साम्य यानी समताको प्राप्त होता है। द्वैत-विषयक समता इस अद्वैतरूप साम्यसे निकृष्ट ही है, अतः वह अद्वैतलक्षणवाला इस उत्कृष्ट समताको प्राप्त होता है।। ३।।

किंच - और भी-

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति
विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावा-
नेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः।। ४।।

यः सर्वभूतैः विभाति (सः) ह एषः प्राणः- जो संपूर्ण प्राणियों में विद्यमान होकर अनेक प्रकारसे प्रकाशित हो रहा है वह यह प्राण अर्थात् ईश्वर है। **विजानन् विद्वान् अतिवादी न भवते-** उस ईश्वरको अपनेसे अभिन्न जानकर विद्वान् अतिवादी नहीं होता है। **आत्मक्रीडः आत्मरतिः क्रियावान् एषः ब्रह्मविदां वरिष्ठः-** यह विद्वान् आत्मामें क्रीडा करनेवाला, आत्मामें प्रीति रखनेवाला, ज्ञानध्यानादि क्रियावाला ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठतम है।। ४।।

योऽयं प्राणस्य प्राणः पर ईश्वरो ह्येष प्रकृतः सर्वैर्भूतैर्ब्रह्मादि-स्तम्बपर्यन्तैः इत्थंभूतलक्षणे तृतीया, सर्वभूतस्थः सर्वात्मा सन्नित्यर्थः, विभाति विविधं दीप्यते। जो यह प्राणका प्राण प्रसंगप्राप्त परमेश्वर है, यह ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब पर्यन्त सब भूतोंसे अर्थात् सभी भूतोंमें स्थित होकर सर्वात्मा होकर अनेक प्रकारसे देदीप्यमान हो रहा है। यहाँ इत्थंभूत लक्षणमें तृतीया विभक्तिका प्रयोग हुआ है। (जिस चिन्हसे किसीकी पहचान होती है उस चिन्हवाचक शब्दमें तृतीया विभक्ति होती है यथा जटाभिस्तापसः)

एवं सर्वभूतस्थं यः साक्षादात्मभावेनायमहमस्मीति विजानन्विद्वान्वाक्या- र्थज्ञानमात्रेण स भवते भवति न भवतीत्येतत्किमतिवाद्यातीत्य सर्वान्या- न्वदितुं शीलमस्येत्यतिवादी। इस प्रकार जो विद्वान् उस सर्वभूतस्थ ईश्वरको 'मैं यह हूँ' ऐसा साक्षात् अपनी आत्माके रूपसे जाननेवाला है, वह उस 'तत्त्वमसि' वाक्यार्थके ज्ञानमात्रसे नहीं होता। क्या नहीं होता? अतिवादी नहीं होता। जिसका स्वभाव और सबको अतिक्र- मण करके बोलनेका होता है उसे अतिवादी कहते हैं। **यस्त्वेवं साक्षादात्मानं प्राणस्य प्राणं विद्वानतिवादी स न भवतीत्यर्थः।** तात्पर्य यह कि जो इस प्रकार प्राणके प्राण साक्षात् आत्माको जाननेवाला है वह अतिवादी नहीं होता। **सर्वं यदात्मैव नान्यदस्तीति दृष्टं तदा किं ह्यसावतीत्य वदेत्। यस्य त्वपरमन्यद्दृष्टमस्ति स तदतीत्य वदति। अयं तु विद्वानात्मनोऽन्यन्न पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति। अतो नातिवदति।** जब यह जाना कि जो कुछ है वह आत्मा ही है आत्मासे भिन्न कुछ भी नहीं है, तब वह किसका अतिक्रमण करके बोलेगा? किन्तु जिसका कोई दूसरी दीखनेवाला पदार्थ है वही उसका अतिक्रमण करके बोलता है। यह तो विद्वान् आत्मासे भिन्न न कुछ देखता है, न सुनता है और न कुछ जानता है। इसलिए यह अतिवदन नहीं करता है। **किं चात्मक्रीड आत्मन्येव च क्रीडा क्रीडनं यस्य नान्यत्र पुत्रदारादिषु स आत्मक्रीडः।** और भी वह आत्मक्रीड है अर्थात् जिसकी केवल आत्मामें क्रीडन (खेलना) है अन्य पुत्र, स्त्री आदिमें नहीं, वह आत्मक्रीड है। **तथात्मरतिरात्मन्येव च रती रमणं प्रीतिर्यस्य स आत्मरतिः। क्रीडा बाह्यसाधनसापेक्षा रतिस्तु साधननिर- पेक्षा बाह्यविषयप्रीतिमात्रमिति विशेषः।** और वह आत्मरति है। आत्मा में रति यानी रमण यानी प्रीति है जिसकी उसे आत्मरति कहते हैं। बाहरके साधनकी अपेक्षावाली क्रीडा होती है। अन्य साधनोंसे निरपेक्ष बाह्यविषयोंमें प्रीतिमात्रको रति कहते हैं। यही इन दोनोंमें

विशेषता है। **तथा क्रियावाञ्ज्ञानध्यानवैराग्यादिक्रिया यस्य सोऽयं क्रियावान्।** तथा क्रियावान् अर्थात् ज्ञान, ध्यान एवं वैराग्यादि क्रियाएँ जिसकी है उसे क्रियावान् कहते हैं। **समासपाठ आत्मरतिरेव क्रियास्य विद्यत इति बहुव्रीहिमतुवर्थयोरन्यतरोऽतिरिच्यते।** आत्मरतिक्रियावान् इस प्रकार समस्त पाठमें आत्मरति ही इसकी क्रिया है, इस प्रकर बहुव्रीहि और मतुप् अर्थोमें कोई एक अधिक होता है। (अर्थात् निष्फल या व्यर्थ है। इससे व्यस्त पाठ ही सही है।) **आत्मनि रतिरात्मरतिस्तत्पुरुषः सैव क्रिया-ऽस्यास्तीत्यात्मरतिक्रियावानिति मतुवैवैकः प्रतीयते कथमुक्तं बहुव्रीहिमतुबर्थयो-रन्यतरोऽतिरिच्यत इति।** आत्मामें रति आत्मरतिः यह तत्पुरुष समास है। आत्मरति ही इसकी क्रिया है आत्मरतिक्रियावान् यह मतुप् अन्त एक ही प्रतीति होती है। फिर भाष्यमें कैसे कहा कि बहुव्रीहि और मतुपमेंसे एक अधिक हो रहा है? **सत्यमसमासपाठे द्वयोरर्थवत्त्वमासीत्समासपाठे त्वन्यतरो मतुबतिरिच्ये विशिष्यते बाह्यक्रियानिवृत्तिलाभादित्यर्थः।** आपकी शंका कुछ अंशमें सही है। असमास पाठमें दोनों शब्द सार्थक हैं किन्तु समास पाठमें तो अन्यतर यानी दूसरा मतुप्, विशेष अर्थ बता रहा है क्योंकि इससे बाहरकी क्रियाकी निवृत्ति का लाभ हो रहा है।

एकदेशिव्याख्यामुद्भाव्य निराचष्टे- केचित्त्वित्यादिना। एकदेशीकी व्याख्या को उठाकर उसका निराकरण करते हैं- **केचित्त्वग्निहोत्रादिकर्मब्रह्मविद्ययोः समुच्चयार्थमिच्छन्ति।** कुछ समुच्चयवादी आत्मरति और क्रियावान् इन दोनों विशेषणोंसे अग्निहोत्रादि कर्म और ब्रह्मविद्याके समुच्चय अर्थ लगाते हैं। **तच्चैष ब्रह्मविदां वरिष्ठ इत्यनेन मुख्यार्थवचनेन विरुध्यते। न हि बाह्मक्रियावानात्मक्रीड आत्मरतिश्च भवितु शक्तः कश्चिद्वाह्यक्रियाविनिवृत्तो ह्यात्मक्रीडो भवति बाहक्रियात्मक्रीडयोर्विरो-धात्। न हि तमःप्रकाशयोर्युगपदेकत्र स्थितिः संभवति।** किन्तु उनका यह कथन 'ब्रह्मविदां वरिष्ठ' इस मुख्यार्थ कथनसे विरुद्ध है। क्योंकि बाह्य क्रियावाला आत्मक्रीड और आत्मरति नहीं हो सकता। कोई बिरला पुरुष बाह्यक्रियायोंसे निवृत्त होकर आत्मक्रीड होता है।

क्योंकि बाह्यक्रिया और आत्मक्रीडामें विरोध है। अन्धकार और प्रकाशका एकसाथ एक स्थानपर होना संभव नहीं है। **तस्मादसत्प्रल-पितमेवैतदनेन ज्ञानकर्मसमुच्चयप्रतिपादनम्।** अतः इस श्रुति वचनसे ज्ञान और कर्मके समुच्चयका प्रतिपादन मिथ्या प्रलाप ही है। **अनेन वचनेन ज्ञानकर्मसमुच्चयप्रतिपादनं क्रियत इत्येतदसत्प्रलपितमेवेति योजना।। ४।।** आत्मरति और क्रियावान् इन दो कथनसे ज्ञानकर्म- समुच्चयका प्रतिपादन किया जाता है, यह मिथ्या प्रलाप है। इस प्रकार योजना करनी चाहिए।। ४।।

'अन्या वाचो विमुञ्चथ' (मुं.२.२.५) 'संन्यासयोगात्' (मु.३.२.६) इत्यादिश्रुतिभ्यश्च। यही बात 'अन्या वाचो विमुंचथ' 'संन्यासयोगात्' इत्यादि श्रुतियोंसे भी सिद्ध होती है। **तस्मादयमेवेह क्रियावान्यो ज्ञानध्यानादिक्रियावानसंभिन्नार्यमर्यादः संन्यासी।** अतएव जो ज्ञान, ध्यान आदि क्रिया करनेवाला, आर्यमर्यादाका उलंघन न करनेवाला संन्यासी ही क्रियावान् है। **य एवंलक्षणो नातिवाद्यात्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावान्ब्रह्मनिष्ठः स ब्रह्मविदां सर्वेषां वरिष्ठः प्रधानः।। ४।।** जो ऐसे लक्षणवाला अर्थात् अतिवादी नहीं है आत्मक्रीड, आत्मरति और क्रियावान् ब्रह्मनिष्ठ हो वही सभी ब्रह्मज्ञानियोंमें वरिष्ठ यानी प्रधान है।। ४।।

अधुना सत्यादीनि भिक्षोः सम्यग्ज्ञानसहकारीणि साधनानि विधीयन्ते निवृत्तिप्रधानानि- अब भिक्षु (संन्यासी)के लिए सम्यक् ज्ञानके सहकारी साधन निवृत्तिप्रधान सत्य आदिका विधान किया जाता है-

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।। ५।।

हि एषः आत्मा नित्यं सत्येन तपसा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण लभ्यः– निश्चय रूपसे यह आत्मा नित्य सत्य, तपस्या, सम्यक्–ज्ञान और ब्रह्मचर्यके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। **अन्तःशरीरे ज्योति–र्मयः हि शुभ्रः–** वह आत्मा शरीरके अन्दर हृदयपुण्डरीकआकाशके मध्यमें शुद्ध ज्योतिर्मय रूपमें विद्यमान है। **यं क्षीणदोषाः यतयः पश्यन्ति–** जिसे पापरहित संन्यासी अनुभव करते हैं।। ५।।

सत्येनानृतत्यागेन मृषावदनत्यागेन लभ्यः प्रातव्यः। किंच तपसा हीन्द्रियमनएकाग्रतया 'मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः' (महा.शा.२५०.४) इति स्मरणात्। सत्य अर्थात् अनृत यानी मिथ्या–भाषणके त्यागसे यह आत्मा प्राप्त किया जा सकता है। और भी मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता रूप तपसे यह प्रातव्य है। क्योंकि स्मृतिमें कहा है कि मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता ही श्रेष्ठ तप है। **तद्ध्यनुकूलमात्मदर्शनाभिमुखीभावात्परमं साधनं तपो नेतरच्चान्द्राय–णादि।** क्योंकि वह तप ही आत्मसाक्षात्कारके अभिमुख कराने के लिए अनुकूल श्रेष्ठ साधन है। दूसरे चान्द्रायणादि तप नहीं। **एष आत्मा लभ्य इत्यनुषङ्गः सर्वत्र।** यह आत्मा प्राप्तव्य इसका सर्वत्र संबन्ध है। **सम्यग्ज्ञानेन यथाभूतात्मदर्शनेन ब्रह्मचर्येण मैथुनासमाचा–रेण।** सम्यक् ज्ञानसे अर्थात् यथार्थ आत्मज्ञानसे। ब्रह्मचर्यसे अर्थात् मैथुन आचरणके अभावसे। **नित्यं सत्येन नित्यं तपसा नित्यं सम्य–ग्ज्ञानेनेति सर्वत्र नित्यशब्दोऽन्तर्दीपिका न्यायेन अनुषक्तव्यः।** नित्य सत्यसे, नित्य तपस्यासे, नित्य सम्यक्ज्ञानसे; इस प्रकार नित्यशब्द देहली दीपक न्यायसे सबके साथ जोड देना चाहिए। **वक्ष्यति च 'न येषु जिह्ममनृतं न माया च' (प्र.१.१६) इति।** इसी बातको आगे प्रश्नोपनिषद् में कहेंगे कि 'जिनमें अकुटिलता अनृत और माया नहीं है' इस प्रकार।

कोऽसावात्मा य एतैः साधनैर्लभ्य इत्युच्यते। जो आत इन साधनोंसे प्राप्त किया जाता है वह कौन है? इसपर श्रुति कहती है- **अन्तःशरीरेऽन्तर्मध्ये शरीरस्य पुण्डरीकाकाशे ज्योतिर्मयो हि रुक्मवर्णः शुभ्रः शुद्धो यमात्मानं पश्यन्त्युपलभन्ते यतयो यतनशीलाः संन्यासिनः क्षीणदोषाः क्षीणक्रोधादिचित्तमलाः।** अन्तःशरीरे यानी शरीरके मध्यभाग में हृदयकमलव्याप्त आकाशमें यह ज्योतिर्मय यानी सुवर्णवर्ण शुभ्र यानी शुद्ध आत्मा है जिस आत्माको क्षीणदोष यानी क्रोधादि चित्तके मलसे रहित यतिजन यानी प्रयत्नशील संन्यासी देखते यानी अनुभव करते हैं। **स आत्मा नित्यं सत्यादिसाधनैः संन्यासिभिर्लभ्यते। न कादाचित्कैः सत्यादिभिः लभ्यते।** सदा अभ्यास किया गया सत्यादि साधनोंसे संन्यासियोंके द्वारा वह आत्मा प्राप्त होता है। कभी कभी पालन किये गये सत्यादि साधनोंसे वह प्राप्त नहीं होता। **सत्यादिसा-धनस्तुत्यर्थो[1]ऽर्थवादः।** सत्यादि साधन स्तुतिके अर्थमें अर्थवाद है।। ५।। <u>सम्यग्ज्ञानसहकारीणीति</u>- **अत्र सम्यग्ज्ञानशब्देन वस्तुविषयावगतिफला-वसानं वाक्यार्थज्ञानमुच्यते। अवगतिफलस्य स्वकार्येऽविद्यानिवृत्तौ सहकार्यपेक्षा-सम्भवात्। अतोऽपरिपक्वज्ञानस्य सत्यादीनां च परिपक्वविद्यालाभाय समुच्चय इष्यत एवं। नैतावता भास्कराभिमतसिद्धिः। परिपक्वविद्यायाः सहकार्यपेक्षायां मानाभावात्। ततः कर्मासंश्लेषश्रवणाद्देवादीनां कर्मविहीनानां मुक्तिश्रवणाच्चेति।। ५।।** सम्यक् ज्ञान सहकारीणि यहाँ सम्यक्ज्ञान शब्दसे वस्तुको विषय करनेवाला अवगति (अनुभव)रूप फलमें समाप्त होनेवाला वाक्यार्थज्ञान कहा जाता है। अपने कार्यमें अविद्याकी निवृत्ति अवगतिका फल है। उसमें सहकारी अपेक्षा संभव नहीं है। अतः अपरिपक्वज्ञानवालेका परिपक्व विद्यालाभके लिए सत्यादियों का समुच्चय इष्ट है। इतने मात्रसे भाष्कर अभिमत समुच्चय कि सिद्धि नहीं होती। परिपक्व विद्याकी सहकारी अपेक्षा में कोई प्रमाण नहीं है। क्योंकि परिपक्व ज्ञानसे कर्मसंश्लेषका अभाव तथा कर्मविहीन देवताओंकी मुक्ति सुना गया है।। ४।।

१.(स्तुति और निन्दा दो प्रकारके अर्थवाद होते हैं। 'स प्रजापतिरात्मनो वपामुदखिदत्' यह स्तुतिपरक अर्थवाद है। 'बर्हिषि रजतं न देयम् आगे है सो रोदीत्' य निन्दापरक अर्थवाद है।

अथवा गुणवाद-स्तुति, अनुवाद और भूतार्थवाद इस प्रकार तीन भेद है। 'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः।' इसमें वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता यह स्तुतिपरक अर्थवाद है। गुणवादमें प्रतिपाद्य अर्थका प्रमाणान्तरसे विरोध होता है जैसे 'आदित्यो यूपः' अर्थात् आदित्यगुणवाले यूप। अनुवाद 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' प्रत्यक्षसे सिद्धका अनुवाद है। भूतार्थवादमें प्रमाणान्तरका विरोध नहीं होता जेसे 'इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्'।

सत्यमेव जयति नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाऽऽक्रमन्त्यषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।। ६।।

सत्यं एव जयते न अनृतम्– सत्यवादी ही विजय प्राप्त करता है, मिथ्यावादी नहीं। **देवयानः पन्था सत्येन विततः–** देवयान मार्ग सत्यके द्वारा विस्तृत है। **येन हि आप्तकामाः ऋषयः आक्रमन्ति** – जिस देवयान मार्गसे पूर्णकाम ऋषिलोग उस पदको प्राप्त करते हैं, **यत्र सत्यस्य तत् परमं निधानम्–** जहाँ सत्यका वह श्रेष्ठ निधान (भंडार या खजाना) है। अर्थात् सत्याचरण का श्रेष्ठफल वह परम पद है।। ६।।

सत्यमेव सत्यवानेव जयति नानृतं नानृतवादीत्यर्थः। न हि सत्यानृतयोः केवलयोः पुरुषानाश्रितयोर्जयः पराजयो वा सम्भवति। सत्य अर्थात् सत्यवादी ही जयको प्राप्त होता है, अनृत यानी मिथ्यावादी नहीं। पुरुषका आश्रय किये बिना केवल सत्य या मिथ्या की जय या पराजय संभव नहीं है। **प्रसिद्धं लोके सत्यवादिनाऽनृत-वाद्यभिभूयते न विपर्ययः।** संसारमें प्रसिद्ध है कि मिथ्यावादी सत्यवा-दीसे परास्त हो जाता है। इसके विपरीत नहीं। **अतः सिद्धं सत्यस्य बलवत्साधनत्वम्।** इसलिए सत्य बलवान् साधन है यह सिद्ध हो गया है। **किं च शास्त्रतोऽप्यवगम्यते सत्यस्य साधनातिशयत्वम्।** और भी सत्यका श्रेष्ठ साधन होना शास्त्र से भी जाना जाता है। **कथम्। सत्येन यथाभूतवादव्यवस्थया पन्था देवयानाख्यो विततो विस्तीर्णः**

सातत्येन प्रवृत्तः येन यथा ह्याक्रमन्ति क्रमन्त ऋषयो दर्शनवन्तः कुहकमायाशाठ्याहंकारदम्भानृतवर्जिता ह्याप्तकामा विगततृष्णा सर्वतो यत्र यस्मिंस्तत्परमार्थतत्त्वं सत्यस्योत्तमसाधनस्य सम्बन्धि साध्यं परमं प्रकृष्टं निधानं पुरुषार्थरूपेण निधीयत इति निधानं वर्तते। किस प्रकार सो बतलाते हैं- सत्य अर्थात् यथार्थ वचनकी व्यवस्थासे देवयानसंज्ञक मार्ग विस्तीर्ण यानी निरन्तरतासे प्रवृत्त होता है, जिस मार्गसे कपट, छल, शठता, अहंकार, दम्भ और अनृतसे रहित तथा जिनकी सभी कामनाओंकी पूर्ति हो गयी है और सब ओरसे तृष्णा-रहित दर्शनवन्तः (उपासक) ऋषिगण वहाँ जाते हैं, जिसमें उत्तम साधनरूप सत्यका संबन्धी उसका साध्यरूप परमार्थतत्त्व, परम अर्थात् उत्कृष्ट निधान है। पुरुषार्थ रूपसे निहित होता है इससे निधान कहते हैं। **तत्र च येन पथाऽऽक्रमन्ति स सत्येन वितत इति पूर्वेण संबन्धः।** उस पदमें जिस मार्गसे जाते हैं वह मार्ग सत्यसे विस्तीर्ण है, इस प्रकार पूर्ववाक्यसे इसका संबन्ध है।। ६।। **कुहकं परवंचनम्। अन्तरन्यथा गृहीत्वा बहिरन्यथा प्रकाशनं माया। शाठ्यं विभवानुसारेणाप्रदानम्। अहंकारो मिथ्याभिमानः। दम्भो धर्मध्वजित्वम्। अनृतमयथादृष्टभाषणम्। एतैर्दोषैर्वर्जिता इत्यर्थः।। ६।।** दूसरेको ठगना कुहक है। अन्दर कुछ मानकर बाहर और कुछ बताना माया है। धनके अनुरूप न देना यह शाठ्य यानी शठता है। मिथ्या अभिमान अहंकार है। दिखावा दम्भ है। देखे हुएसे भिन्न कथन मिथ्या है। इन दोषोंसे वर्जित होना यह अर्थ है।। ६।।

सत्यस्य निधानं यदुक्तं तत्पुनर्विशेष्यत इत्याह- कि तत्कंधर्मकं च तदिति।। ७।। जो कहा गया कि वह सत्यका निधान है उसका फिर अन्य विशेषण देते हैं- **किं तत्किंधर्मकं च तदित्युच्यते-** वह क्या है और किन धर्मोंवाला है, इसे कहते हैं-

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च

पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्।। ७।।

बृहत् च तत् दिव्यं अचिन्त्यरूपं सूक्ष्मात् तत् सूक्ष्मतरं विभाति– वह महान् और दिव्य है तथा उसका स्वरूप अचिन्त्य है। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर है। वह सूर्यादि रूपसे प्रकाशित हो रहा है। **तत् दूरात् सुदूरे इह पश्यत्सु अन्तिके च–** वह दूर प्रदेशसे भी अत्यन्त दूर प्रदेशमें है तथा यहाँ चेतनावाले प्राणियों के देहमें वह अत्यन्त निकटमें है। **इह एव गुहायां निहितम्–** वह इस बुद्धिरूपी गुहामें स्थित है।। ७।।

वृहन्महच्च तत्प्रकृतं ब्रह्म सत्यादिसाधनं सर्वतो व्याप्तत्वात्। सत्यादि जिसकी प्राप्तिके साधन हैं वह प्रसंगप्राप्त ब्रह्म सब ओर व्याप्त होनेसे बृहत यानी महान् है। **दिव्यं स्वयंप्रभमनिन्द्रियगोचरमत एव न चिन्तयितुं शक्यतेऽस्य रूपमित्यचिन्त्यरूपम्।** वह दिव्य अर्थात् स्वयंप्रकाश है। इन्द्रियगोचर नहीं है इसलिए ही इसके स्वरूपका चिन्तन नहीं किया जा सकता है। इससे अचिन्तरूप है। **सूक्ष्मादा–काशादेरपि तत्सूक्ष्मतरं निरतिशयं हि सौक्ष्म्यमस्य सर्वकारणत्वाद्विभाति विविधमादित्यचन्द्राद्याकारेण भाति दीप्यते।** सूक्ष्म आकाशादिसे भी वह सूक्ष्मतर है। सबके कारण होनेसे इसकी सूक्ष्मता निरतिशय है। वह विभाति अर्थात् वह आदित्य, चन्द्र आदि रूपसे अनेक प्रकारसे प्रकाशित हो रहा है। **किं च दूराद्विप्रकृष्टदेशात्सुदेरे विप्रकृष्टतरे देशे वर्ततेऽविदुषामत्यन्तागम्यत्वात्तद्ब्रह्म।** वह ब्रह्म अज्ञानीयोंके लिए अत्यन्त अगम्य होनेसे दूरसे भी दूर है अर्थात् दूरदेशसे भी अत्यन्त दूरदेशमें है। **इह देहेऽन्तिके समीपे च विदुषामात्मत्वात्।** तथा विद्वानों का आत्मा होनेसे इस शरीरमें अत्यन्त समीप भी है। **सर्वान्तरत्वा–च्चाकाशस्यप्यन्तरश्रुतेः।** सर्वान्तर होनेसे वह आकाशके भी अन्दर है यह बात श्रुतिसे सिद्ध होती है। (य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। बृ.३.७.१२)। **इह**

पश्यत्सु चेतनावत्स्वित्येतन्निहितं स्थितं दर्शनादिक्रियावत्त्वेन योगिभि- र्लक्ष्यमाणम्। यहाँ इस लोकमें पश्यत्सु अर्थात् चेतनावान् प्राणियोंमें दर्शनादिक्रियावाला होकर स्थित है, इस प्रकार योगियोंके द्वारा लक्षित होता है। **क्व। गुहायां बुद्धिलक्षणायाम्। तत्र हि निगूढं लक्ष्यते विद्वभिः। तथाप्यविद्यया संवृतं सन्न लक्ष्यते तत्रस्थमेवाद्विद्भिः।। ७।।** योगियोंसे कहाँ देखा जाता है? बुद्धिरूप गुफा में। वहाँ ही छिपा हुआ है जो विद्वानोंसे लक्षित होता है। फिर भी अविद्यासे आच्छादित होता हुआ हृदय गुहामें अज्ञानियोंके द्वारा लक्षित नहीं होता है।। ७।।

पुनरप्यसाधारणं तदुपलब्धिसाधनमुच्यते- फिर भी उसकी उपलब्धिका असाधारण साधन बतलाया जाता है-

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व-
स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।। ८।।

न चक्षुषा गृह्यते न अपि वाचा न अन्यैः देवैः तपसा कर्मणा वा – वह ब्रह्म न चक्षु-इन्द्रिय न वाक्-इन्द्रिय न अन्य इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जा सकता है। तपस्य या अग्निहोत्रादि कर्मोंसे भी उसका ग्रहण नहीं होता है। **विशुद्धसत्त्वः ज्ञानप्रसादेन-** क्योंकि शुद्धान्तःकरण पुरुष ज्ञानके प्रसादसे उसे ग्रहण कर सकता है। **ततः तु निष्कलं ध्यायमानः तं पश्यते-** इससे निष्कल ब्रह्मका ध्यान यानी चिन्तन करता हुआ पुरुष उसे देखता है।। ८।।

यस्मान्न चक्षुषा गृह्यते केनचिदप्यरूपत्वान्नापि गृह्यते वाचान- भिधेयत्वान्न चान्यैर्देवैरिरेन्द्रियैः। क्योंकि रूपहीन होनेसे यह ब्रह्म किसीसे भी नेत्रद्वारा देखा नहीं जा सकता, तथा अवाच्य होनेसे

वाणीसे ग्रहण किया नहीं जा सकता, अन्य देव अर्थात् इन्द्रियोंसे भी उसका ग्रहण नहीं होता है। **तपसः सर्वप्राप्तिसाधत्वेऽपि न तपसा गृह्यते। तथा वैदिकेनाग्निहोत्रादिकर्मणा प्रतिद्धमहत्त्वेनापि न गृह्यते।** सब कुछ प्राप्त करनेके साधन तपस्या द्वारा भी उसका ग्रहण नहीं होता है। **(तपसा साध्यते सर्वं तपो हि दुरतिक्रमः)** तथा जिसकी महानता प्रसिद्ध है वैसे अग्निहोत्र आदि वैदिककर्मोंसे भी उसका ग्रहण नहीं होता। **किं पुनस्तस्य ग्रहणे साधनमित्याह– ज्ञानप्रसादेन।** फिर उसके ग्रहण करनेमें क्या साधन है? इस पर कहते हैं– ज्ञानके प्रसादसे अर्थात् ज्ञानकी साधनभूता बुद्धिसे। **आत्मावबोधनसमर्थमपि स्वभावेन सर्व–प्राणिनां ज्ञानं बाह्यविषरागादिदोषकलुषितमप्रसन्नमशुद्धं सन्नावबोधयति नित्यं संनिहितमप्यात्मतत्त्वं मलावनद्धमिवादर्शम्। विलुलितमिव सलिलम्।** सभी प्राणियोंका ज्ञान (बुद्धि) यद्यपि स्वभावसे आत्मबोध करानेमें समर्थ है तथापि बाह्यविषयमें आसक्तिके कारण कलुषित होकर अप्रसन्न यानी अशुद्ध होता हुआ सर्वदा समीपस्थ होनेपर भी उस आत्मतत्त्वका बोध नहीं करा सकता। जैसे मलसे ढके हुए दर्पण या चंचल जल में प्रतिबिम्ब नहीं दीखता। **तद्यदेन्द्रियविषय–संसर्गजनितरागादिमलकालुष्यापनयनादादर्शसलिलादिवत्प्रसादितं स्वच्छं शान्तमवतिष्ठते तदा ज्ञानस्य प्रसादः स्यात्।** वह बुद्धि जब इन्द्रियोंका विषयसे होनेवाला संसर्ग से उत्पन्न आसक्ति आदि मलरूप कलुषता के हट जानेसे दर्पण, जल आदिके समान प्रसादित यानी स्वच्छ, शान्त हो जाती है उस समय ज्ञान (बुद्धि)की प्रसन्नता होती है। **तेन ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वो विशुद्धान्तःकरणो योग्यो ब्रह्म द्रष्टुं यस्मात्ततस्तस्मात्तु तमात्मानं पश्यते पश्यत्युपलभते निष्कलं सर्वावयव–भेदवर्जितं ध्यायमानः सत्यादिसाधनवानुपसंहृतकरण एकाग्रेण मनसा ध्यायमानश्चिन्तयन्।। ८।।** क्योंकि उस ज्ञानकी प्रसन्नता से शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष ब्रह्मके साक्षात्कारमें योग्य होता है इसलिए

सत्यादि साधनसंपन्न इन्द्रियोंका निरोध कर एकाग्र चित्तसे ध्यान करता हुआ उस निष्कल यानी समस्त अवयव भेदसे वर्जित उस आत्माको देखता यानी उपलब्ध करता है।। ८।। **ज्ञानप्रसादेनेति– अत्र ज्ञायतेऽर्थोऽनेनेति व्युत्पत्त्या बुद्धिरुच्यते। ध्यायमानो ज्ञानप्रसादं लभते। ज्ञानप्रसा–देनाऽऽत्मानं पश्यतीति क्रमो द्रष्टव्यः। संशयादिमलरहितस्य प्रमाणज्ञानस्यैव तत्त्व–साक्षात्कारहेतुत्वाद्ध्यानक्रियायाः प्रमितिसाधत्वाप्रसिद्धेरित्यर्थः।। ८।।** इससे पदार्थ जाना जाता है इस व्युत्पत्तिसे यहाँ बुद्धिको ज्ञान कहा गया है। ध्यान करनेसे बुद्धिकी प्रसन्नता (शुद्धि)को प्राप्त करता है। शुद्धबुद्धिसे आत्माका साक्षात्कार करता है। इस प्रकार क्रम समझना चाहिए। क्योंकि संशय आदि मलसे रहित प्रमाणज्ञान ही तत्त्वसाक्षात्कारमें हेतु है। ध्यानक्रिया ज्ञानका साधन होनेमें प्रसिद्धि नहीं है।। ८।।

यमात्मानमेवं पश्यति– जिस आत्माको साधक इस प्रकार देखता है–

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो
यस्मिन्प्राणः पञ्चधा संविवेश।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा।। ९।।

यस्मिन् पञ्चधा प्राणः संविवेश (तस्मिन्) एषः अणुः आत्मा चेतसा वेदितव्यः– जिस शरीरमें पांच प्रकारसे प्राण प्रविष्ट है उस शरीरके हृदयप्रदेशमें यह सूक्ष्म आत्मा शुद्ध बुद्धि द्वारा जानने योग्य है। **प्रजानां प्राणैः चित्तं सर्वं ओतं यस्मिन् विशुद्धे एषः आत्मा विभवति–** प्रजाओंका इन्द्रियोंके साथ सब जिस चित्तसे व्याप्त है, जिसके विशुद्ध होने पर यह आत्मा अपनेको प्रकाशित करती है।। ९।।

एषोऽणुः सूक्ष्मश्चेतसा विशुद्धज्ञानेन केवलेन वेदितव्यः। यह अणु यानी सूक्ष्म आत्मा चित्त यानी विशुद्ध बुद्धिसे जानने योग्य है।

क्वासौ। यस्मिञ्शरीरे प्राणो वायुः पंचधा प्राणापानादिभेदेन संविवेश सम्यक् प्रविष्टस्तस्मिन्नेव शरीरे हृदये चेतसा ज्ञेय इत्यर्थः। वह कहाँ जानने योग्य है? जिस शरीरमें प्राण अपान आदि पांच प्रकारसे प्राण सम्यक् प्रविष्ठ है उस शरीरके हृदयमें बुद्धिसे जानने योग्य है। यह अर्थ है। **कीदृशेन चेतसा वेदितव्य इत्याह–** वह आत्मा किस प्रकारके चित्तसे जानने योग्य है इस पर कहते हैं– **बौद्धादेश्चित्तादौ चेतनत्वभ्रमदर्शनाच्चित्तं स्वस्मिन्स्वसंसर्गिणि च चैतन्याभिव्यंजकत्वे स्वभावत एव योग्यम्। ततश्चित्ते परमात्मनोऽभिव्यक्तिसम्भवाच्चेतसा ज्ञेयत्वमुच्यत इति संभाव– नार्थमाह– प्राणैः सहेन्द्रियैश्चितत्तमिति।** बौद्ध इन्द्रियादि तथा चित्तादिमें चेतनत्व का भ्रम देखे जानेसे चित्त अपनेमें और अपने संबन्धियोंमें चैतन्यके अभिव्यंजक (प्रकाशक) होनेमें स्वभावसे योग्य है। इससे चित्तमें परमात्माकी अभिव्यक्ति संभव होनेसे चित्तके द्वारा ज्ञेयत्व कहा गया है। इस प्रकार संभावना अर्थ को कहते हैं– **प्राणैः सहेन्द्रियैः चित्तं सर्वमन्तःकरणं प्रजानामोतं व्याप्तं येन क्षीरमिव स्नेहेन काष्ठमिवाग्निना।** कि जिस प्रकार दूध घृतसे और काष्ठ अग्निसे व्याप्त है उसी प्रकार प्रजाओंका प्राण अर्थात् इन्द्रियों के साथ चित्त यानी अन्तःकरण जिस चेतनासे व्याप्त है। **सर्वं हि प्रजानामन्तःकरणं चेतनवत्प्रसिद्धं लोके।** क्योंकि लोकमें प्रजाके सभी अन्तःकरण चेतनायुक्त प्रसिद्ध है। **ओतं चैतन्येन सर्वस्य तर्हि चित्ते किमिति ब्रह्म स्वत एवापरोक्षं न भवतीत्यत आह– यस्मिंश्च चित्त इति।। ९।।** सब चैतन्यसे व्याप्त है तो ब्रह्म स्वत ही चित्तमें क्यों अपरोक्ष नहीं होता है, इसपर कहते हैं– **यस्मिंश्च चित्ते क्लेशादिमलवियुक्ते शुद्धे विभवत्येष उक्त आत्मा विशेषेण स्वेनात्मना विभवत्यात्मानं प्रकाशय– तीत्यर्थः।। ९।।** जिस चित्तके शुद्ध होने पर अर्थात् क्लेश आदि मलसे रहित होने पर कहेगये आत्मा विशेष रूपसे यानी अपने स्वरूपसे अपनेको प्रकाशित करता है।। ९।।

य एवमुक्तलक्षणं सर्वात्मानमात्मत्वेन प्रतिपन्नस्तस्य सर्वात्म– त्वादेव सर्वावाप्तिलक्षणं फलमाह– इस प्रकार कहे गये लक्षणवाला

सर्वात्माको अपनी आत्मारूपसे जो जानता है वह सर्वात्मा होनेसे उसको सर्वप्राप्तिरूप फल कहते हैं-

यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां-
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः।। १०।।

इति तृतीय मुण्डके प्रथमः खण्डः।। १।।

विशुद्धसत्त्वः यं यं लोकं मनसा संविभाति यान् च कामान् कामयते तं तं लोकं जयते तान् च कामान् - शुद्ध अन्तःकरण आत्मज्ञानी मनसे (अपने लिए या दूसरे के लिए) जिस-जिस लोक की भावना करता है और जिन-जिन भोगोंको चाहता है वह उसी-उसी लोक और उन्हीं-उन्हीं भोगोंको प्राप्त कर लेता है। **तस्मात् भूतिकामः आत्मज्ञं हि अर्चयेत्** - इसलिए ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाला पुरुष आत्मज्ञानीकी पूजा करे।। १०।।

सगुणविद्याफलमपि निर्गुणविद्यास्तुतये प्ररोचनार्थमुच्यते- यं यमिति।। १०।। इत्यथर्ववेदीयमुण्डकोपानिषद्भाष्यटीकायां तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः।। १।। सगुणविद्याफल भी निर्गुणविद्याकी स्तुतिके लिए अर्थात् साधकोंको उसमें लगाने के लिए किया जाता है। इसे कहते हैं- **यं यं लोकं पित्रादिलक्षणं मनसा संविभाति संकल्पयति मह्यमन्यस्मै वा भवेदिति विशुद्धसत्त्वः क्षीणक्लेश आत्मविन्निर्मलान्तःकरण कामयते यांश्च कामान्प्रार्थयते भोगंस्तं तं लोकं जयते प्राप्नोति तांश्च कामान्संकल्पितान्भोगान्।** विशुद्धसत्त्व अर्थात् जिसके क्लेश क्षीण हो गये हैं ऐसे निर्मल अन्तःकरण आत्मज्ञानी अपने लिए या किसी अन्यके लिए मनसे जिस जिस पितृलोक आदिका संकल्प करता है अथवा जिन-जिन भोगोंको चाहता है वह ज्ञानी या वह व्यक्ति उसी-उसी लोक और उन्हीं-उन्हीं भोगोंको प्राप्त करता है। **तस्माद्विदुषः सत्यसंकल्पत्वादा-**

त्मज्ञमात्मज्ञानेन विशुद्धान्तःकरणं ह्यर्चयेत् पूजयेत्पादप्रक्षालनशुश्रूषा-नमस्कारादिभिर्भूतिकामो विभूतिमिच्छुः। ततः पूजार्ह एवासौ।। १०।। क्योंकि ज्ञानी सत्यसंकल्प होता है इसलिए ऐश्वर्यकी इच्छावाले पुरुष आत्मज्ञानी यानी आत्मज्ञानसे जिसका अन्तःकरण विशुद्ध हो गया है, उसका अर्चन करे, पादप्रक्षालन, सेवा, नमस्कार आदिसे उसकी पूजा करे। इससे (सत्यसंकल्प होनेसे) वह पूजाके योग्य है।। १०।।

इत्यथर्ववेदीयमुण्डकोपनिषद्भाष्ये तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः।। १।।

(तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः)

यस्मात्- उसकी अर्चना करनी चाहिए क्योंकि-

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम
यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामा-
स्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः।। १।।

स एतत् परमं धाम ब्रह्म वेद- वह ज्ञानी इस परम आस्पद ब्रह्मको जानता है। **यत्र निहितं विश्वं शुभ्रं भाति-** जिसमें यह विश्व निहित यानी अर्पित है। जो शुद्धरूपसे प्रकाशित हो रहा है। **ये हि अकामाः पुरुषं उपासते ते धीराः एतत् शुक्रं अतिवर्तन्ति-** जो निष्काम पुरुष ऐसे ज्ञानी पुरुषकी उपासना करते हैं वे बुद्धिमान् इस शुक्र यानी वीर्यका अतिक्रमण कर जाते हैं। अर्थात् जन्म-मरण चक्रसे छूट जाते हैं।। १।।

स वेद जानातीत्येतद्यथोक्तलक्षणं ब्रह्म परममुत्कृष्टं धाम सर्व-कामानामाश्रयमास्पदं यत्र यस्मिन्ब्रह्मणि धाम्नि विश्वं समस्तं जगन्नि-हितमर्पितं चच्च स्वेन ज्योतिषा भाति शुभ्रं शुद्धम्। वह आत्मज्ञानी

संपूर्ण कामानाओंके परम यानी उत्कृष्ट आश्रयभूत इस पूर्वोक्त लक्षणवाले ब्रह्मको जानता है, जिस ब्रह्मरूप धाम (स्थान या आश्रय) में यह विश्व यानी समस्त जगत् निहित यानी समर्पित है। और जो अपनी ज्योतिसे शुभ्र यानि शुद्धरूपसे प्रकाशित हो रहा है। **तमप्येव-मात्मज्ञं पुरुषं ये ह्यकामा विभूतितृष्णावर्जिता मुमुक्षवः सन्त उपासते परमिव सेवन्ते ते शुक्रं नृबीजं यदेतत्प्रसिद्धं शरीरोपादानकारणमति-वर्तन्त्यतिगच्छन्ति धीरा धीमन्तो न पुनर्योनिं प्रसर्पन्ति 'न पुनः क्वचिद्रतिं करोति' इति श्रुतेः। अतस्तं पूजयेदित्यभिप्रायः।। १।।** जो निष्काम पुरुष यानी विभूति तृष्णा रहित होता हुआ जो मुमुक्षुलोग उस इस प्रकारके आत्मज्ञ पुरुषकी उपासना करते हैं, वे बुद्धिमान् लोग शुक्र यानी प्रसिद्ध शरीरके उपादान कारणरूप मनुष्यशरीरके बीजका अतिक्रमण कर जाते हैं अर्थात् फिर योनिमें प्रवेश नहीं करते। जैसा कि श्रुतिमें कहा है 'फिर कहीं प्रीति नहीं करता है'। अभिप्राय यह है कि इसलिए उस आत्मज्ञानीकी पूजा करे।। १।।

मुमुक्षोः कामत्याग एव प्रधानं साधनमित्येतद्दर्शयति- मुमुक्षुके लिए कामनायोंका त्याग ही प्रधान साधन है- इस बातको दिखलाते हैं-

कामान्यः कामयते मन्यमानः
स कामभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्वि-
हैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः।। २।।

मन्यमानः यः कामान् कामयते सः कामभिः तत्र तत्र जायते- भोगोंके गुणोंका चिन्तन करनेवाला जो पुरुष भोगोंकी इच्छा करता है वह उन कामनाओंसे युक्त होकर तहाँ-तहाँ उत्पन्न होता है। (जहाँ उन कामनाओंकी प्राप्ति होगी उन उन योनिमें जन्म लेता है।) **तु**

पर्याप्तकामस्य कृतात्मनः इहैव सर्वे कामाः प्रविलीयन्ति- परन्तु जिसकी कामनाएँ पूर्ण हो गयी है उस कृतकृत्य पुरुषकी सभी कामनाएँ इस लोकमें ही पूर्णरूपसे लीन हो जाती हैं।। २।।

कामान्यो दृष्टादृष्टेष्टविषयान्कामयते मन्यमानस्तद्गुणांश्चि-न्तयानः प्रार्थयते स तैः कामभिः कामैर्धर्माधर्मप्रवृत्तिहेतुभिर्विषयेच्छा-रूपैः सह जायते तत्र तत्र। जो पुरुष दृष्ट और अदृष्ट अभीष्ट विषयोंके गुणोंका चिन्तन करते हुए उनकी कामना करता है यानी इच्छा करता है तो वह धर्माधर्ममें प्रवृत्ति करानेके हेतुभूत इच्छारूप कामनोंके साथ वहीं-वहीं उत्पन्न होता है। **यत्र यत्र विषयप्राप्ति-निमित्तं कामाः कर्मसु पुरुषं नियोजयन्ति तत्र तत्र तेषु तेषु विषयेषु तैरेव कामैर्वेष्टितो जायते।** अर्थात् जहाँ-जहाँ विषयप्राप्तिके लिए कामनाएँ पुरुषको कर्ममें नियुक्त करती हैं वह वहीं-वहीं उन्हीं-उन्हीं प्रदेशोंमें उन कामनाओंसे युक्त होकर जन्म लेता है। **यस्तु परमार्थ-तत्त्वविज्ञानात्पर्याप्तकाम आत्मकामत्वेन परिसमन्तत आप्ताः कामा यस्य तस्य पर्याप्तकामस्य कृतात्मनोऽविद्यालक्षणादपररूपादपनीय स्वेन परेण रूपेण कृत आत्मा विद्यया यस्य तस्य कृतात्मनस्त्विहैव तिष्ठ-त्येव शरीरे सर्वे धर्माधर्मप्रवृत्तिहेतवः प्रविलीयन्ति विलयमुपयान्ति नश्यन्तीत्यर्थः।** जो ता परमार्थतत्त्वके ज्ञानसे पूर्णकाम हो गया है अर्थात् आत्मकाम होनेसे चारों ओरसे प्राप्त है कामना जिसकी उस पर्याप्तकाम कृतात्माके; यानी विद्यासे अविद्यालक्षणवाला अपररूपसे हटाकर अपने पर रूपसे स्थापित किया है आत्माको जिसने वह कृतात्मा है। उस कृतात्माके इस शरीरमें रहते हुए धर्माधर्मकी प्रवृत्ति के समस्त हेतु विलयको प्राप्त होते हैं यानी नष्ट हो जाते हैं। **कामास्तज्जन्महेतुविनाशान्न जायन्ते इत्यभिप्रायः।। २।।** अभिप्राय यह है कि अपनी उत्पत्तिके हेतुका नाश हो जानेसे कामनाएँ उत्पन्न नहीं होती।। २।। **परमार्थतत्त्वविज्ञानादिति- विषयेषु यथास्थितदोषदर्शनात्पर्याप्तकामः**

क्षीणरागो विरुद्धलक्षणयाऽऽत्मकामस्याऽऽत्मबुभुत्सयैव वशीकृतचित्तस्य विषयेभ्यः कामा निवृत्ता एव भवन्तीत्यर्थः। परमार्थतत्त्वविज्ञानसे अर्थात् विषयोंमें यथास्थित दोषोंके दर्शनसे पर्याप्तकाम यानी आसक्ति रहित विरुद्धलक्षणासे आत्मकाम अर्थात् आत्माको जाननेकी इच्छासे वशीकृत चित्त है जिसका उसकी कामना विषयोंसे निवृत्त ही हो जाती है। (विरुद्धलक्षणा अर्थात् जब संसारके पदार्थ की कामना समाप्त हो गयी तो उसके विपरीत आत्मज्ञानकी कामना होती है इससे आत्मकाम) **सामर्थ्या- दवगम्यते स्वहेतुविनाशत्पुनः कामा न जायन्त इति जातानां ज्ञानं विनाऽपि क्षयसम्भवादित्यर्थः।। २।।** सामर्थ्यसे जाना जाता है कि अपने हेतुके विनाश होनेसे कामनाएँ उत्पन्न नहीं होती है। और जो कामनाएँ उत्पन्न हुई हैं उनका विनाश ज्ञानके बिना भी संभव है।। २।। (क्योंकि जो उत्पन्न होता है उसका विनाश अवश्यंभावी है।)

यद्येवं सर्वलाभात्परम आत्मलाभस्तल्लाभाय प्रवचनादय उपाया बाहुल्येन कर्तव्या इति प्राप्त इदमुच्यते- इस प्रकार यदि और सब लाभोंकी अपेक्षा आत्मलाभ ही उत्कृष्ट है तो उसकी प्राप्तिके लिए प्रवचन आदि उपाय अधिकतासे करने चाहिए- एसी बात प्राप्त होने पर यह कहा जाता है-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।। ३।।

अयमात्मा न प्रवचनेन न मेधया न बहुना श्रुतेन लभ्यः- यह आत्मा न तो प्रवचनसे न मेधा यानी धारणाशक्तिसे न अनेकबार श्रवणसे प्राप्त होता है। **एषः यं वृणुते तेन लभ्यः-** यह अधिकारी जिस का वरण करता है यानी प्राप्त करना चाहता है उस प्राप्त करनेकी चाह से यह प्राप्त किया जा सकता है। **तस्य एष आत्मा स्वां तनुं विवृणुते-** उसके लिए यह आत्मा अपने स्वरूपको प्रकाशित कर देता है।। ३।।

योऽयमात्मा व्याख्यातो यस्य लाभः परः पुरुषार्थो नासौ वेद-शास्त्राध्ययनबाहुल्येन प्रवचनेन लभ्यः। जो यह आत्मा जिसकी व्याख्या की गयी है, जिसका लाभ परम पुरुषार्थ है, वह वेदशास्त्रके अधिक अध्ययनरूप प्रवचनसे प्राप्त होने योग्य नहीं है। **तथा न मेधया ग्रन्थार्थधारणशक्त्या।** तथा ग्रन्थके अर्थको धारण करनेवाली शक्तिरूप मेधासे प्राप्तव्य नहीं है। **न बहुना श्रुतेन नापि भूयसा श्रवणेनेत्यर्थः।** अनेक बार शास्त्र श्रवणसे भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। **न बहुना श्रुतेनेति- उपनिषद्विचारव्यतिरिक्तेनेत्यर्थः।** उपनिषद्के विचार से अतिरिक्त शास्त्र श्रवणसे यह अर्थ है। **केन तर्हि लभ्य इत्युच्यते- यमेव परमात्मनमेवैष विद्वान्वृणुते प्राप्तुमिच्छन्ति तेन वरणेनैष पर-मात्मा लभ्यो नान्येन साधनान्तरेण। नित्यलब्धस्वभावत्वात्।** तो फिर वह किस उपायसे प्राप्त होता है? इसपर कहते हैं- जिस परमात्मा को यह विद्वान् वरण करता है अर्थात् प्राप्त करनेकी इच्छा करता करता है, उस वरणके द्वारा ही यह परमात्मा प्राप्त होने योग्य है। किसी अन्य साधनोंसे नहीं। क्योंकि वह नित्य प्राप्त स्वभाववाला है। **तेन वरणेनेति कथं व्याख्यातं यत्तदोर्भिन्नार्थत्वं?** भाष्यकारने तेन वरणेन इस प्रकार अर्थ कैसे किया? क्योंकि यत् और तत् का अर्थ भिन्न है? (यत् शब्दका अर्थ परमात्मा और तत् शब्दका अर्थ वरण इस प्रकार भिन्नार्थक यत् तत् शब्दका मेल नहीं बैठता?) **साधनविवक्षायाः प्रस्तुतत्वादित्यर्थं ब्रूमः।** साधनकी विवक्षासे प्रस्तुत होनेसे तेन वरणेन यह अर्थ कहते हैं। **तेन वरणेनैष आत्मा लभ्यो भवति। बहिर्मुखेन तु शतशोऽपि श्रवणादौ क्रियमाणे न लभ्यते। अतः परमात्माऽस्मीत्यभेदानुसंधानं परमात्माभजनं पुरस्कृत्यैव श्रवणादि संपादनीयमिति भावः।** उस वरणसे यह आत्मा प्राप्त होता है। बहिर्मुख साधकसे तो हजार बार श्रवण आदि करने पर भी वह आत्मा प्राप्त नहीं होता। इसलिए 'मैं परमात्मा हूँ' इस प्रकारका अभेद अनुसंधानरूप परमात्माके भजनपूर्वक श्रवण आदिका संपादन करना चाहिए। **अथवा यमेव परमात्मानं वृणुते तेन परमात्मना मुमुक्षु-रूपव्यवस्थितेन वरणेनाभेदानुसंधानलक्षणेन प्रार्थनेन कृत्वा लभ्यः परमात्मैव मुमु-क्षुरूपव्यवस्थित इत्यभेदानुसंधनेनैव लभ्यो न कर्मणेत्यर्थः।। ३।।** अथवा जिस

परमात्माका वरण करता है, मुमुक्षुरूपमें अवस्थित उस परमात्माके द्वारा अभेदलक्षण वरण यानी प्रार्थना करके प्राप्त परमात्मा ही है। मुमुक्षुरूपमें अवस्थित इस प्रकार अभेद अनुसंधानसे वह प्राप्त करने योग्य है कर्मसे नहीं। यह अर्थ है। **कीदृशोऽसौ विदुषः आत्मलाभ इत्युच्यते।** विद्वान्‌को होनेवाला यह आत्मलाभ कैसा होता है इसपर कहते हैं- **तस्यैव आत्माऽविद्यासञ्छन्नां स्वां परां तनुं स्वात्मतत्त्वं स्वरूपं विवृणुते प्रकाशयति प्रकाश इव घटादिर्विद्यायां सत्यामाविर्भवतीत्यर्थः। तस्माद-न्यत्यागेनात्मलाभप्रार्थनैवात्मलाभसाधनमित्यर्थः।। ३।।** अविद्यासे आच्छन्न उसी साधककी आत्मा अपनी श्रेष्ठ स्वरूपको, अपने आत्मतत्त्वको अपने स्वरूप को प्रकाशति कर देता है। जिस प्रकार प्रकाशमें घटादिकी अभिव्यक्ति होती है उसी प्रकार विद्यारूप प्रकाश होने पर आत्माकी अभिव्यक्ति होती है। इसलिए कर्म आदि अन्य साधनोंके त्यागसे आत्मलाभ प्रार्थना ही आत्माके लाभका साधन है। यह अर्थ है।। ३।।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वां-
स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम।। ४।।

बलहीनेन अयं आत्मा न लभ्यः न च प्रमादात् (लभ्यः) अपि अलिंगात् तपसः वा (लभ्यः)। यह आत्मा बलहीनसे प्राप्त नहीं हो सकता है। और प्रमादसे तथा संन्यास रहित तपस्यासे भी यह नहीं प्राप्त होता है। **यः विद्वान् एतैः उपायैः यतते तस्य एषः आत्मा ब्रह्मधाम विशते-** किन्तु जो विद्वान् बल, अप्रमाद और संन्यास पूर्वक तपस्या के द्वारा प्रयत्न करता है उसकी यह आत्मा ब्रह्मधाममें प्रवेश कर जाता है।। ४।।

आत्मप्रार्थनासहायभूतान्येतानि च साधनानि बलाप्रमादतपांसि लिंगयुक्तानि संन्याससहितानि – लिंगयुक्त अर्थात् संन्यास सहित बल, अप्रमाद और तप, ये सब साधन आत्मप्रार्थनाके सहायक है। **यस्मादयमात्मा बलहीनेन बलप्रहीणेना[१]त्मनिष्ठाजनितवीर्यहीनेन न लभ्यो नापि लौकिपुत्रपश्वादिविषयसङ्गनिमित्तप्रमादात् तथा तपसो वाप्यलिङ्गाल्लिङ्गरहितात्। तपोऽत्र ज्ञानम् लिङ्गं संन्यासः। संन्यासरहिताज्ज्ञानान्न लभ्यत इत्यर्थः।** क्योंकि यह आत्मा बलहीन अर्थात् आत्मनिष्ठाजनित शक्तिसे रहित पुरुषद्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है; तथा लौकिक पुत्र एवं पशु आदि विषयोंकी आसक्तिके कारण होने वाले प्रमादसे न प्राप्य है, तथा लिंग (संन्यास)रहित तपस्यासे भी नहीं प्राप्य है। यहाँ तपका अर्थ ज्ञान है और लिंगका अर्थ संन्यास है। तात्पर्य यह कि संन्यास रहित ज्ञानसे प्राप्त नहीं होता है। **एतैरुपायैर्बलाप्रमादसंन्यासज्ञानैर्यतते तत्परः सन्प्रयतते यस्तु विद्वान्विवेक्यात्मवित्तस्य विदुषः एष आत्मा विशते संप्रविशति ब्रह्मधाम।। ४।।** इसलिए जो विद्वान् यानी विवेकी आत्मवेत्ता तत्पर होकर बल, अप्रमाद, संन्यास और ज्ञान– इन उपायोंसे प्रयत्न करता है उस विद्वान्‌की यह आत्मा ब्रह्मधाम (ब्रह्मरूप स्थान या प्रकाश)में प्रवेश कर जाता है।। ४।। **वीर्यमत्र मिथ्याज्ञानानभिभाव्यतालक्षणोऽतिशयः।** यहाँ वीर्यका अर्थ मिथ्याज्ञानसे पराभव न होता हुआ लक्षण वाला आत्मनिष्ठाका अतिशय (अधिकता)। **अलिंगादिति कथम्? इन्द्रजनकगार्गीप्रभृतीनामप्यात्मलाभश्रवणात्। सत्यम्। संन्यासो नाम सर्वत्यागात्मकस्तेषामपि [२]स्वत्वाभिमानाभावादस्त्येवाऽऽन्तरः संन्यासे बाह्यं तु लिंगमविवक्षितम् ‘ न लिंगं धर्मकारणम्’ इति स्मरणात् नैष्कर्म्यसाहित्यं तु विवक्षितम्।। ४।।** आप कैसे कहते हैं कि अलिंग तपसे यानी संन्यास रहित तपसे यह प्राप्त नहीं है। क्योंकि इन्द्र, जनक और गार्गी आदिको आत्मलाभ हुआ है यह श्रुति कहती है। ठीक् है कि श्रुति कहती है। किन्तु संपूर्णत्याग संन्यासका अर्थ है। उनका स्वत्व (अपनापना)का अभिमान के अभाव होनेसे आन्तरिक संन्यास है ही। बाह्यसंन्यास यहाँ विवक्षित नहीं है।

स्मृतिमें कहा है कि 'लिंग (चिन्ह) धर्मका कारण नहीं है'। यहाँ संन्याससे नैष्कर्म्यसे युक्त होना विवक्षित है।। ४।।

कथं ब्रह्म संविशत इत्युच्यते– विद्वान् किस रूपमें ब्रह्ममें प्रविष्ट होता है सो बतलाते है–

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः
कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्त धीरा
युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति।। ५।।

एनं प्राप्य ऋषयः ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानः वीतरागाः प्रशान्ताः – इस आत्माको प्राप्तकर ऋषिगण ज्ञानतृप्त, कृतकृत्य, विरक्त और प्रशान्त हो जाते हैं। **ते धीराः सर्वगं सर्वतः प्राप्तः युक्तात्मनः (सन्तः) सर्वं एव आविशन्ति–** वे विवेकी पुरुष सर्वव्यापक ब्रह्मको सब ओर प्राप्त कर मरणकालमें समाहितचित्त होकर ब्रह्ममें प्रवेश करते हैं।। ५।।

संप्राप्य समवगम्यैनमात्मानमृषयो दर्शनवन्तस्तेनैव ज्ञानेन तृप्ता न बाह्येन तृप्तिसाधनेन शरीरोपचयकारणेन कृतात्मानः परमात्मस्वरू–पेणैव निष्पन्नात्मानः सन्तो वीतरागाः वीतरागादिदोषाः प्रशान्ता उपर–तेन्द्रियाः। इस आत्माको सम्यक् प्रकारसे प्राप्तकर अर्थात् सम्यक् रूपसे जानकर ऋषिलोग यानी आत्मसाक्षात्कार करनेवाले जो शरीर को पुष्ट करनेवाले किसी बाह्य तृप्तिसाधनोंसे नही किन्तु उस ज्ञानसे ही तृप्त हैं, जो कृतात्मा अर्थात् जिसकी आत्मा परमात्मास्वरूपसे निष्पन्न हो गया है ऐसे कृतात्मा होते हुए, वीतराग यानी आसक्ति आदि दोषोंसे रहित, प्रशान्त अर्थात् जिनकी इन्द्रियाँ विषयोंसे निवृत्त हो गया है। **त एवंभूताः सर्वगं सर्वव्यापिनमाकाशवत्सर्वतः सर्वत्र प्राप्त नोपाधिपरिच्छिन्नैकदेशेन किं तर्हि तद्ब्रह्मैवाद्वयमात्मत्वेन प्रतिपद्य धीरा अत्यन्तविवेकिनो युक्तात्मानो नित्यसमाहितस्वभावाः सर्वमेव समस्तं**

शरीरपातकालेऽप्याविशन्ति भिन्ने घटे घटाकाशवदविद्याकृतोपाधिपरि-च्छेदं जहाति। एवं ब्रह्मविदो ब्रह्मधाम प्रविशन्ति।। ५।। ऐसे भावको प्राप्त हुए वे लोग सर्वग यानी आकाशके समान सर्वव्यापक ब्रह्मको सर्वतः अर्थात् उपाधिसे परिच्छिन्न एक देशमें नहीं किन्तु सर्वत्र उस ब्रह्मको ही अद्वैत आत्मारूपसे जानकर। जाननेसे क्या होता है? धीर यानी अत्यन्त विवेकी युक्तात्मा यानी नित्य समाहित स्वभाववाला वह पुरुष शरीरके पतनके समय सबके अन्दर प्रवेश कर जाता है यानी जैसे घटके फूट जानेपर घटाकाश घट-उपाधिको त्याग देता है वैसे अविद्या परिच्छेद को त्याग देता है। इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मधाममें प्रवेश करता है।। ५।।

किं च- और भी

वेदन्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।। ६।।

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगात् शुद्धसत्त्वाः यतयः - उपनिषद् ज्ञानसे जिन्होंने परमात्मास्वरूप अर्थको सुनिश्चित कर लिया है तथा त्यागरूप योगसे जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है तथा जो प्रयत्नशील हैं **ते सर्वे परामृताः-** वे सारे जीवित अवस्थामें ब्रह्म- भूत मुमुक्षु **परान्तकाले ब्रह्मलोकेषु परिमुच्यन्ति-** शरीरत्यागके समय ब्रह्ममें लीन होकर मुक्त हो जाते हैं।। ६।।

वेदान्तजनितविज्ञानं वेदान्तविज्ञानं तस्यार्थः परमात्मा विज्ञेयः सोऽर्थः सुनिश्चितो येषां ते वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः। उपनिषदोंसे उत्पन्न ज्ञान वेदान्तविज्ञान, उसका अर्थ विज्ञेय परमात्मा, वह अर्थ सुनिश्चित कर लिया है जिन्होंने वे वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था हैं। **ते**

च संन्यासयोगात्सर्वकर्मपरित्यागलक्षणयोगात्केवलब्रह्मनिष्ठास्वरूपाद्योगा-द्यतयो यतनशीलाः शुद्धसत्त्वाः शुद्धं सत्त्वं येषां संन्यासयोगात्ते शुद्ध-सत्त्वाः। और वे संन्यासयोगसे यानी समस्तकर्मपरित्याग लक्षणवाले साधनोंसे यानी केवल ब्रह्मनिष्ठास्वरूप साधनसे, यति यानी प्रयत्न-शील, शुद्धसत्त्व यानी जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है। संन्यास योगसे जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है। **ते ब्रह्मलोकेषु संसारिणां ये मरणकालास्तेऽपरान्तास्तानपेक्ष्य मुमुक्षूणां संसारावसाने देहपरि-त्यागकालः परान्तकालस्स्मिन्परान्तकाले साधकानां बहुत्वाद्ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोक एकोऽप्यनेकवद् दृश्यते प्राप्यते वा, अतो बहुवचनं ब्रह्मलो-केषु ब्रह्मणीत्यर्थः परामृताः परममृतममरणधर्मकं ब्रह्मात्मभूतं येषां ते परामृता जीवन्त एव ब्रह्मभूताः परामृताः सन्तः परिमुच्यन्ति परिसम-न्तात्प्रदीपनिर्वाणवद् घटाकाशवच्च निवृत्तिमुपयान्ति।** वे ब्रह्मलोकमें-संसारियोंका जो मरण काल है वह अपरान्त (निकृष्ट अन्त) है उसकी अपेक्षासे मुमुक्षुओंका जो संसारका अवसानमें जो देहत्यागका समय है वह परान्त- उत्कृष्ट-अन्त है। उस परान्तकालमें ब्रह्म ही लोक हे इससे ब्रह्मलोक, ब्रह्म एक होते हुए अनेक जैसा दीखता या प्राप्त होता है इससे बहुवचनका प्रयोग हुआ है, उस ब्रह्मलोकमें अर्थात् ब्रह्ममें परामृत होकर यानी पर अमृत-अमरणधर्मवाला ब्रह्म आत्मभूत हुआ है जिनका वे परामृत यानी जीते जी ब्रह्मभूत होकर परिमुक्त हो जाते हैं यानी दीपनिर्वाण या घटाकाशके समान चारों ओरसे निवृत्ति (मोक्ष)को प्राप्त हो जाते हैं। **प्रदीपस्य वर्तिकृतावच्छेदध्वंसे यथा तेजःसामान्यतापत्तिस्तद्वदित्याह- प्रदीपनिर्वाणवदिति।** दीपककी वत्ती से होनेवाले अवच्छेदके ध्वंस होनेपर अर्थात् वत्ती जल जाने पर जैसे प्रदीप सामान तेजरूपताको प्राप्त होता है उसी प्रकार इसे कहते हैं- प्रदीपनिर्वाण जैसे।
परिमुच्यन्ति परिसमन्तान्मुच्यन्ते सर्वे न देशान्तरं गन्तव्यमपेक्षन्ते। परिमुक्त हो जाते हैं- सभी चारों ओरसे मुक्त हो जाते हैं यानी

किसी अन्य गन्तव्य देशकी अपेक्षा नहीं रखते हैं। **'शकुनीनामिवाकाशे जले वारिचरस्य च पदं यथा न दृश्यते तथा ज्ञानवतं गतिः' (महा.शा.२३९.२४) '[1]अनध्वगा अध्वसु पारयिष्णवः' इति श्रुतिस्मृतिभ्यः।** 'जैसे आकाशमें पक्षियोंके और जलमें जलचरोंका पैरके चिन्ह (रास्ता) दिखायी नहीं देता वैसे ही ज्ञानियोंकी गति होती है।' 'संसारमार्गसे पार जानकी इच्छावाले मार्गरहित होते हैं' इस प्रकार श्रुति और स्मृति वाक्यसे यह सिद्ध होता है। **पदं पादन्यासप्रतिबिम्बं न दृश्येताभावादेवेत्यर्थः।** पद अर्थात् पादन्यासका प्रतिबिम्ब वह नहीं दीखता है क्योंकि होता ही नहीं। **अध्वस्विति- संसाराध्वनां पारयिष्णवः पारयितुं समापयितुमिच्छन्तीति समाप्तिकामा अनध्वगा भवन्तीत्यर्थः।** मार्गमें अर्थात् संसारमार्गको पार करना यानी समाप्त करनेकी इच्छा रखते हैं इससे संसारमार्गके समाप्तिकामना वाले मार्गरहित होते हैं।

१.ब्रह्मनिधिं मनसा वेदयन्तः पश्यन्तो गुह्यमपरं परं च। अनध्वगा अध्यसु पारयिष्णवः ब्राह्मणास्तु सदृशाः सूर्येण।। इतिहासोपनिषद्

तर्कतोऽपीहैव मोक्षो वक्तव्य इत्याह- देशपरिच्छिन्ना हीत्यादिना।। ६ ।। तर्कसे भी जीते जी मोक्ष कहना चाहिए इसपर कहते हैं- **देशपरिच्छिन्ना हि गतिः संसारविषयैव परिच्छिन्नसाधनसाध्यत्वात्। ब्रह्म तु समस्तत्वान्न देशपरिच्छेदेन गन्तव्यम्।** परिच्छिन्न साधनसे साध्य होनेके कारण देशपरिच्छिन्न गति संसारको ही विषय करती है। किन्तु ब्रह्म सर्वरूप होनेसे देशपरिच्छेदसे गन्तव्य नहीं है। **यदि हि देशपरिच्छिन्न ब्रह्म स्यान्मूर्तद्रव्यवदाद्यन्तवदन्याश्रितं सावयव- मनित्यं कृतकं च स्यात्। न त्वेवंविधं ब्रह्म भवतिमर्हति। अतस्तत्प्राप्तिश्च नैव देशपरिच्छिन्ना भवितुं युक्ता।** यदि ब्रह्म देशसे परिच्छिन्न होगा तो मूर्तद्रव्यके समान आदि और अन्तवाला, अन्यके आश्रित, अवयववाला, अनित्य और कृतक सिद्ध होगा। किन्तु ब्रह्म ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए उसकी प्राप्ति भी देशपरिच्छिन होना युक्तियुक्त नहीं है। **अपि चाविद्यादिसंसारबन्धापनयनमेव मोक्षमिच्छन्ति ब्रह्मविदो न तु कार्य-**

भूतम्।। ६।। और ब्रह्मज्ञानी अविद्यादि-संसारबन्धनकी निवृत्तिरूप मोक्षकी ही इच्छा करते हैं, किसी कार्यभूत पदार्थकी नहीं।। ६।।

किं च मोक्षकाले- और भी मोक्षके समय

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा
देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा
परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति।। ७।।

पंचदश कलाः प्रतिष्ठा प्रतिगताः- प्राणादि पंचदश कलाएँ अपने आश्रयमें प्रतिष्ठित हो जाती है। **सर्वे देवाः च देवतासु (प्रतिष्ठा गताः)।** चक्षुरादि सभी देव अपने कारण आदित्यादि देवमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं। **कर्माणि विज्ञानमयः च आत्मा परे अव्यये सर्वे एकीभवन्ति-** तथा उस ज्ञानीके संचितादि कर्म और विज्ञानमय जीवात्मा सब कुछ उस पर अव्यय ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं।। ७।।

या देहारम्भिकाः कलाः प्राणाद्यास्ताः स्वां स्वां प्रतिष्ठां गताः स्वं स्वं कारणं गता भवन्तीत्यर्थः। जो देहकी आरम्भ करनेवाली प्राणादि कलाएँ हैं वे अपनी-अपनी प्रतिष्ठाको अर्थात् अपने-अपने कारणको प्राप्त हो जाती है। **स्वाः प्रतिष्ठाः प्रति गता भवन्तीति भूतांशानां भौतिकानां च महाभूतेषु लयो दर्शितः।** अपनी प्रतिष्ठामें लौट जाते हैं अर्थात् भूतांश और भौतिक पदार्थो महाभूतोंमें लय दिखाया है। **प्रतिष्ठा इति द्विती-यावहुवचनम्।** प्रतिष्ठा यह द्वितीया बहुवचन है। **पंचदश पंचदश-संख्याका या अन्त्यप्रश्नपरिपठिताः प्रसिद्धाः।** पन्द्रह यानी पन्द्रह संख्यावाली प्रसिद्ध कलाएँ जो अन्तिम प्रश्नमें पढ़ी गयी हैं। **अन्त्य-प्रश्नेति- ब्राह्मणग्रन्थे षष्ठप्रश्ने प्राणाद्या याः कलाः पठिता इत्यर्थः।** ब्राह्मण ग्रन्थके षष्ठ प्रश्नमें प्राण आदि जो कला पढ़े गये हैं। **मायामयमहाभूतानामंशावष्टब्धै-जीवाविद्यामयभूतसूक्ष्मैः प्रातिस्विकैरदृष्टसहकृतैः प्रातिस्विकाः प्राणादय आरभ्यन्ते। ते च कर्माक्षिप्तैर्देवैः सूर्यादिभिरधिष्ठीयन्त। कर्मणो भोगेनावसाने ते देवाः स्वस्थानं**

गच्छन्ति। मायामय महाभूतांशसे बंधेहुए जीवके अविद्यामयभूतसूक्ष्मोंके द्वारा प्रातिस्विक (अपने)(प्रत्येक जीवका अपने अपने) प्राणादि (इन्दियों)का आरंभ होता है। वे भी कर्मसे आक्षिप्त- आवर्जित- आकृष्ट सूर्यादि देवताओंसे अधिष्ठित होते हैं। कर्मका भोगसे क्षय हो जाने पर वे इन्द्रिय-अधिष्ठित देवता अपने स्थान सूर्यादिको प्राप्त होते हैं। **देवाश्च देहाश्रयाश्चक्षुरादिकरणस्थाः सर्वे प्रतिदेवतास्वादित्यादिषु गता भवन्तीत्यर्थः।** देव अर्थात् देहके आश्रित चक्षुरादि इन्द्रियोंमें स्थित देवता अपने-अपने कारण आदि-त्यादिमें लीन हो जाते हैं। **यच्च प्रातिस्विकं स्वाद्याकार्यं तच्च सर्वं ब्रह्मैव सम्पद्यत इत्याह- यानि चेत्यादिना।। ७।।** जो प्रत्येकका अपनी अविद्याके कार्य है वह सब ब्रह्म हो जाता है। इसे कहते हैं- **यानि च मुमुक्षुणा कृतानि कर्माण्यप्रवृत्तफलानि प्रवृत्तफलानामुपभोगेनैव क्षीयमाणत्वात्,** कर्माणि अर्थात् मुमुक्षुयोंके द्वारा किये अप्रवृत्तफलवाले कर्म (संचित और आगामी) क्योंकि प्रवृत्तफलवाले प्रारब्धकर्मोंका तो उपभोगसे ही क्षय हो जानेसे **विज्ञानमयश्चात्माविद्याकृतबुद्ध्याद्युपाधिमात्मत्वेन मत्वा जलादिषु सूर्यादिप्रतिबिम्बवदिह प्रविष्टो देहभेदेषु,** विज्ञानमय आत्मा अर्थात् सूर्यादि प्रतिबिम्बके समान अविद्याके कारण बुद्धि आदि उपाधियोंको आत्मा- रूपसे जानकर इन भिन्न-भिन्न देहोंमें प्रविष्ट जीवात्मा, **कर्मणां तत्फलार्थत्वात्, सह तेनैव विज्ञानमयेनात्मना, अतो विज्ञानमयो विज्ञानप्रायः,** विज्ञानमय अर्थात् विज्ञानप्राय क्योंकि कर्म उस विज्ञाना- त्माके फल देनेवाले हैं, इससे उस विज्ञानमय आत्माके साथ वे कर्म, **त एते कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मोपाध्यपनये सति परेऽव्ययेऽनन्तेऽक्षये ब्रह्मण्याकाशकल्पेऽजेऽजरेऽमृतेऽभयेऽपूर्वेऽनपरे-ऽनन्तरेऽबाह्येऽद्वये शिवे शान्ते सर्व एकीभवन्त्यविशेषतां गच्छन्ति एकत्वमापद्यन्ते** इस प्रकार वे ये संचितादि कर्म और विज्ञानमयआत्मा (जीवात्मा) सभी अविद्यारूप उपाधिके हट जानेसे पर, अव्यय, अनन्त, अक्षय, अज, अजर, अमृत, अभय, अपूर्व, अनपर, अनन्त, अबाह्य, अद्वय, शिव, शान्त और आकाशके समान ब्रह्ममें

एकीभावको प्राप्त होते हैं यानी सामान्यताको यानी एकत्वको प्राप्त होते हैं। **जलद्याधारापनये इव सूर्यादिप्रतिबिम्बाः सूर्ये घटाद्यपनय इवाकाशे घटाद्याकाशाः।। ७।।** जैसे जल आदि आधारके सुख जानेसे सूर्यादिके प्रतिबिम्ब सूर्यमें समा जाते हैं या घटादिके नष्ट होने पर घटाकाशदि महाकाशमें मिल जाते हैं वैसे जीवात्माके साथ कर्म उस परमात्मामें लीन हो जाते हैं।। ७।।

किं च– और भी

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे–
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।। ८।।

यथा स्नन्दमानाः नद्यः नामरूपे विहाय समुदे अस्तं गच्छन्ति– जैसे बहती हुई नदियाँ नाम और रूपको त्यागकर समुद्रमें खो जाती है, **तथा विद्वान् नामरूपात् विमुक्तः परात् परं दिव्यं पुरुषं उपैति–** वैसे विद्वान् नाम–रूपसे मुक्त होकर परात्पर दिव्य पुरुषको प्राप्त हो जाता है।। ८।।

यथा नद्यो गङ्गाद्याः स्यन्दमाना गच्छन्त्यः समुद्रे समुद्रं प्राप्यास्तमदर्शनमविशेषात्मभावं गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति नाम च रूपं च नामरूपे विहाय हित्वा तथाविद्याकृतनामरूपाद्विमुक्तः सन्विद्वान्परादक्ष–रात्पूर्वोक्तात्परं दिव्यं पुरुषं यथोक्तलक्षणमुपैति उपगच्छति।। ८।। जिस प्रकार बहती हुई गंगा आदि नदियाँ समुद्रको प्राप्तकर अस्त यानी अदर्शन यानी सामान्यभावको प्राप्त हो जाती हैं उसी प्रकार विद्वान् अविद्याकृत नाम–रूपसे मुक्त होकर पूर्वोक्त पर अक्षर (अव्याकृत)से भी पर उपर्युक्त लक्षणविशिष्ट पुरुष (परमात्मा)को प्राप्त हो जाता है।। ८।।

ननु श्रेयस्यनेके विघ्नाः प्रसिद्धा अतः क्लेशानामन्यतमेनान्येन वा देवादिना च विघ्नितो ब्रह्मविदप्यन्यां गतिं मृतो गच्छति न ब्रह्मैव। शंका- श्रेयमार्गमें अनेकों विघ्न प्रसिद्ध हैं अतः किसी क्लेशोंमेंसे किसी एकसे या देवता आदि द्वारा विघ्न किये जाने पर ब्रह्मज्ञानी भी मरनेपर किसी दूसरी गतिको प्राप्त हो जायगा किन्तु ब्रह्मको नहीं ऐसी शंका होने पर कहते हैं- **न; विद्ययैव सर्वप्रतिबन्धस्यापनीत-त्वात्।** नहीं, विद्यासे ही समस्त प्रतिबन्धोंके निवृत्त हो जानेसे ऐसा नहीं होगा। **अविद्याप्रतिबन्धमात्रो हि मोक्षो नान्यप्रतिबन्धः नित्यत्वादा-त्मभूतत्वाच्च। तस्मात्-** मोक्षप्राप्तिमें केवल अविद्या ही प्रतिबन्ध है, और कोई प्रतिबन्ध नहीं है क्योंकि मोक्ष नित्य है तथा आत्मस्वरूप है। इसलिए-

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्या-ब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति।। ९।।

सः यः ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति- जो कोई उस परब्रह्मको जानता है वह ब्रह्म ही हो जाता है। **अस्य कुले अब्रह्मवित् भवति-** इसके कुलमें (शिष्योंमें) कोई अब्रह्मज्ञानी नहीं होता। **(सः) शोकं तरति पाप्मानं तरति गुहाग्रन्थिभ्यः विमुक्तः अमृतः भवति-** वह शोकको तर जाता है, पापोंको तर जाता है तथा हृदयरूपि गुहाग्रन्थियोंसे मुक्त होकर अमर हो जाता है।। ९।।

स यः कश्चिद्ध वै लोके तत्परमं ब्रह्म वेद साक्षादहमेवास्मीति स नान्यां गतिं गच्छति। देवैरपि तस्य ब्रह्मप्राप्तिं प्रति विघ्नो न शक्यते कर्तुम्। आत्मा ह्येषां स भवति। इस लोकमें वह जो कोई उस परब्रह्मको जानता है यानी वह साक्षात् मैं ही हूँ, इस प्रकार जानता है, वह किसी अन्य गतिको प्राप्त नहीं होता। उसकी ब्रह्म-

प्राप्तिमें देवता भी विघ्न उपस्थित नहीं कर सकते हैं। क्योंकि वह तो उनकी आत्मा ही हो जाता है। **तस्माद्ब्रह्मविद्वान्ब्रह्मैव भवति।** इसलिए ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म ही होता है। **किं च नास्यविदुषोऽब्रह्मवित्[1]कुले भवति।** और भी इस विद्वान्के कुलमें कोई अब्रह्मज्ञानी नहीं होता। **किं च तरति शोकमनेकेष्टवैकल्यनिमित्तं मानसं सन्तापं जीवन्नेवाति-क्रान्तो भवति।** और भी वह शोकको पार कर जाता है यानी जीते जी इष्ट वियोग जनित मानसिक सन्तापको पार कर लेता यानी अतिक्रमण कर जाता है। **तरति पाप्मानं धर्माधर्माख्यम्।** तथा धर्मा-धर्मसंज्ञक पापोंको पार कर जाता है। **गुहाग्रन्थिभ्यो हृदयाविद्याग्रन्थि-भ्योविमुक्तः सन्नमृतो भवतीत्युक्तमेव भिद्यते हृदयग्रन्थिरित्यादि।। ९।।** गुहाग्रन्थि यानी हृदयस्थित अविद्याग्रन्थियोंसे विमुक्त होकर अमर हो जाता है, जैसा कि 'भिद्यते हृदयग्रन्थि' इत्यादि मंत्रोंमें कहा गया है।। ९।। १. कुले शिष्यादिवंशे चेत्यर्थः- कुल अर्थात् शिष्य परंपरा।

अथेदानीं ब्रह्मविद्यासम्प्रदानविध्युपप्रदर्शनेनोपसंहारः क्रियते। अनन्तर अब ब्रह्मविद्याप्रदानकी विधिका प्रदर्शन के द्वारा उपसंहार किया जाता है-

तदेतदृचाभ्युक्तम्- यही बात आगेकी ऋचाने भी कही है।

क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः
स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः।
तेषामेवैषां ब्रह्मविद्यां वदेत
शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम्।। १०।।

क्रियावन्तः श्रोत्रियाः ब्रह्मनिष्ठाः- जो साधक क्रियावान्, श्रोत्रिय और अपरब्रह्मनिष्ठ हैं तथा **स्वयं श्रद्धयन्तः एकर्षिं जुह्वतः-** स्वयं श्रद्धापूर्वक एकर्षिनामक अग्निमें हवन करनेवाले हैं, **यैः तु विधिवत् शिरोव्रतं चीर्णम्-** तथा जिन्होंने विधिपूर्वक शिरोव्रतका

अनुष्ठान किया है, **तेषाम् एव एषां ब्रह्मविद्यां वदेत–** उन्हींसे यह ब्रह्मविद्या कहनी चाहिए।। १०।।

तदेतद्विद्यासम्प्रदानविधानमृचा मन्त्रेणाभ्युक्तमभिप्रकाशितम्– उस इस विद्यादानका विधान आगेकी ऋचा यानी मन्त्रसे प्रकाशित किया गया है। **क्रियावन्तो यथोक्तकर्मानुष्ठानयुक्ताः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठा अपरस्मिन्ब्रह्मण्यभियुक्ताः परब्रह्मबुभुत्सवः स्वयमेकर्षिनामानमग्निं जुह्वते जुह्वति श्रद्धयन्तः श्रद्दधानाः सन्तो ये तेषामेव संस्कृतात्मनां पात्रभूतानामेतां ब्रह्मविद्यां वदेत ब्रूयात् शिरोव्रतं शिरस्यग्निधारणलक्ष–णम् यथाथर्वणानां वेदव्रतं प्रसिद्धम् यैस्तु यैश्च तच्चीर्णं विधिवद्यथा–विधानं तेषामेव च।। १०।।** क्रियावन्त अर्थात् कहे गये कर्मानुष्ठानमें लगे हुए, श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ यानी अपरब्रह्ममें दत्तचित्त होते हुए पर– ब्रह्मको जाननेके इच्छुक तथा स्वयं श्रद्धापूर्वक एकर्षि नामक अग्निमें हवन करनेवाले हैं उन्हीं शुद्धचित्त सत्पात्र अधिकारियोंको यह ब्रह्मविद्या बतलानी चाहिए। और अथर्ववेदियोंका प्रसिद्ध शिरपर अग्नि धारण रूप जो वेदव्रत है, उस शिरोव्रतका जिन्होंने विधिपूर्वक अनुष्ठान किया है उसे भी इस ब्रह्मविद्याका उपदेश करना चाहिए।। १०।। **एतद्ग्रन्थद्वारकविद्याप्रदानेऽयं विधिराथर्वणिकानामिति प्रकृतपरामर्शकादेत–च्छब्दादवगम्यते ग्रन्थद्वारेण विद्यायाः प्रकृतत्वसम्भवान्न सर्वत्र ब्रह्मविद्यासम्प्रदान–मिति सूचयन्नाह– एतां ब्रह्मविद्यां वदेतेति।। १०।।** इसी ग्रन्थके द्वारा विद्याप्रदान में यह विधि है। क्योंकि आथर्वणिकानाम् इस प्रकार प्रसंगप्राप्तका परामर्श से एतत् शब्दसे जाना जाता है। ग्रन्थके द्वारा विद्याका प्रसंगप्राप्त संभव है। इससे यह सूचित होता है कि सर्वत्र ब्रह्मविद्याके दानमें यह विधि नहीं है। इस बातको सूचित करते हुए कहते हैं– एतां ब्रह्मविद्यां वदेतेति।। १०।।

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते।
नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्याः।। ११।।

ओम् भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः।।

इति तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः।। २।।

।। इति मुण्डकोपनिषत्समाप्ता।।

तत् एतत् सत्यं ऋषिः अंगिराः पुरा उवाच न एतत् अचीर्णव्रतः अधीते– उस इस सत्यका पूर्वकालमें अंगिरा ऋषिने कहा था कि जिसने शिरोव्रतका अनुष्ठान नहीं किया है वह इसका अध्ययन नहीं कर सकता। **नमः परमऋषिभ्यः नमः परमऋषिभ्यः–** उन ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंको नमस्कार है, परमर्षियोंको नमस्कार है।। ११।।

तदेतदक्षरं पुरुषं सत्यमृषिरङ्गिरा नाम पुरा पूर्वं शौनकाय विधिवदुपसन्नाय पृष्टवत उवाच। उस इस अक्षर सत्य पुरुषको अंगिरानामक ऋषिने पूर्वकालमें अपने समीप विधिपूर्वक आये हुए पूछनेवाले शौनकजीसे कहा था। **तद्वदन्योऽन्योऽपि तथैव श्रेयोऽर्थिने मुमुक्षवे मोक्षार्थं विधिवदुपसन्नाय ब्रूयादित्यर्थः।** इसका तात्पर्य है कि उसके समान अपने समीप विधिपूर्वक आये हुए कल्याणकामी मुमुक्षु पुरुषको उसके मोक्षके लिए इसका उपदेश करें। **नैतद्ग्रन्थरूपम् अचीर्णव्रतोऽचरितव्रतोऽप्यधीते न पठति। चीर्णव्रतस्य हि विद्या फलाय संस्कृता भवतीति।** जिसने शिरोव्रतका आचरण न किया हो ऐसे अचीर्णव्रत पुरुष इस ग्रन्थरूप विद्याका अध्ययन नहीं कर सकता। क्योंकि जिसने उस व्रतका अनुष्ठान किया है उसीकी विद्या संस्कृत (शुद्ध)होकर फलवती होती है। **समाप्ता ब्रह्मविद्या सा येभ्यो ब्रह्मादिभ्यः पारम्पर्यक्रमेण संप्राप्ता तेभ्यो नमः परमऋषिभ्यः परमं ब्रह्म साक्षाद्दृष्टवन्तो ये ब्रह्मादयोऽवगतवन्तश्च ते परमर्षयस्तेभ्यो भूयोऽपि नमः। द्विर्वचनमत्यादरार्थं मुण्डकसमाप्त्यर्थं च।। ११।।** ब्रह्मविद्या का उपदेश समाप्त हुआ। वह विद्या जिन ब्रह्मादिसे परम्पराक्रमसे प्राप्त हुई है उन परमर्षियोंको नमस्कार है। जिन्होंने परब्रह्मका साक्षात् जाना है और उसका अनुभव प्राप्त किया है, वे ब्रह्मादि परम ऋषि हैं। उन्हें फिर से नमस्कार है। यह द्विरुक्ति ऋषियोंके प्रति पूज्यभाव

या सम्मान प्रदर्शनके लिए तथा मुण्डककी समाप्तिके लिए है।।
११।।

इति तृतीयमुण्डकोपनिषद्भाष्ये द्वितीयः खण्डः।। २।।

इति श्रेमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीमच्छंकरभगवतः कृतावाथर्वणमुण्डकोपनिषद्भाष्यं समाप्तम्।।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमदानन्दज्ञानविरचितं मुण्डकोपनिषद्भाष्यव्याख्यानं समाप्तम्।।

इस प्रकार ऋषिकेशस्थ कैलासाश्रमके पूज्यपाद ब्रह्मनिष्ठ हरिहर तीर्थजीके चरणसेवक स्वामी विष्णु तीर्थके द्वारा की गयी हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।।

वर्णानुक्रमणिका